खण्ड 3
भारतीय राज्यव्यवस्थाः उद्‌भव और विकास

खंड 3 परिचय

भारतीय राज्य–व्यवस्था उद्‌भव और विकास का यह खंड भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्य–व्यवस्था B.A आनर्स BSKC 107 के इस पाठ्यक्रम का तृतीय खंड है। इस खंड में वेदकालीन राज्य–व्यवस्था का वर्णन किया गया है। उत्तर वैदिक काल में राज्य–व्यवस्था का स्वरूप कैसा था, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में राज्य का प्रारूप कल्याणमय था जिसका विस्तृत विवेचन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। छात्र इस खंड में भारतीय राज्य–व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

शुभ कामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 वेदकालीन राज्यव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जानकारी का स्रोत

11.2.1 साहित्यिक स्रोत

11.2.2 पुरातत्व के स्रोत

11.3 वेदकालीन अर्थव्यवस्था

11.3.1 वेदकालीन राज्यव्यवस्था

11.3.2 वेदकालीन प्रशासन

11.3.3 वेदकालीन सामाजिक जीवन

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 बोध प्रश्न

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस बारे में जानने में सक्षम होंगे–

- विभिन्न स्रोतों के माध्यम से हम वैदिक काल के बारे में जानने का प्रयास कर सकते हैं ।
- स्रोत जो हमें वैदिक काल के समाज का अध्ययन करने में सक्षम बनाते हैं ।
- वैदिक काल के दौरान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संरचना में परिवर्तन को समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

सिंधु घाटी सभ्यता के पश्चात् भारत में जिस सभ्यता का विकास हुआ उसे ही आर्य/वैदिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस वैदिक काल की जानकारी हमें वेदों से प्राप्त होती है, जिसमें ऋग्वेद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वैदिक काल को ऋग्वैदिक/पूर्व वैदिक काल (1500–1000 ई०पू०) तथा उत्तर वैदिक काल (1000–600 ई०पू०) में बाँटा गया है।

2000–1000 ईसा पूर्व की अवधि के दौरान, संस्कृति के विभिन्न चरणों में समुदाय विकास भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद थे। उनकी संस्कृतियाँ अनिवार्य रूप से कृषि–पशुचारी और इन संस्कृतियों के बारे में हमारी समझ पुरातात्विक अवशेषों पर पूरी तरह से आधारित है क्योंकि हड़प्पा संस्कृति के अपवाद के साथ, इन संस्कृतियों में से कोई भी लिखित दस्तावेज पीछे नहीं छोड़ गया है। ऋग्वेद को सबसे प्राचीन माना जाता है और यह

मंत्रों का सबसे प्राचीन संग्रह है। ऋग्वेद के साक्ष्य जिस मुख्य भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित हैं, वह सप्त–सिंधव या सात नदियों की भूमि मानी गयी है। इस कथित क्षेत्र के अनुरूप होगा पंजाब और उसके पड़ोसी क्षेत्र जैसे हरियाणा लेकिन ऋग्वैदिक भूगोल में गोमल मैदान, दक्षिणी अफगानिस्तान और दक्षिणी जम्मू कश्मीर सम्मिलित हैं।

11.2 जानकारी का स्रोत

प्रारंभिक वैदिक काल के अध्ययन के लिए हमारे पास दो प्रकार के स्रोत हैं–साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत।

आइए हम इस अवधि के लिए साहित्यिक स्रोतों की जांच करें।

साहित्यिक स्रोत –

साहित्यिक स्रोतों में हम सबसे पहले चार वेदों का उल्लेख कर सकते हैं –

- ऋग्वेद
- सामवेद
- यजुर्वेद
- अथर्ववेद

इनमें से ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रंथ है।

'वेद' शब्द संस्कृत की धातु 'विद' से बना है जिसका अर्थ है 'जानना'।

वेद अनिवार्य रूप से प्रार्थनाओं और मंत्रों का संकलन है, जो अलग–अलग लोगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । ये चारों वेद 'संहिता' भी कहलाते हैं, इस अर्थ में वे उस समय की मौखिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मंत्र मौखिक रूप से पढ़ने, सीखने और प्रसारित करने के लिए थे, वे वैदिक काल– वेद लिखे नहीं गये थे, जब वे पहली बार बनाए गए थे। इस कारण से किसी भी संहिता को सटीक रूप से दिनांकित नहीं किया जा सकता है ।

ऋग्वैदिक संहिता में दस मण्डल शामिल हैं, जिसमें से 'मंडल' 2 से 7 तक को सबसे पुराना माना जाता है और जो विशेष रूप से प्रारंभिक वैदिक काल से संबंधित है । मंडल 1, 8, 9 और 10 को बाद में संहिता में परिवर्धन माना, जोडे गये हैं। विद्वानों ने ऋग्वेद और अवेस्ता (पुराना ईरानी पाठ) में प्रयुक्त भाषा में समानता पाई । इन भाषाई समानताओं के आधार पर और अवेस्ता की कालानुक्रमिक पूर्वता को ध्यान में रखते हुए ऋग्वेद के परिप्रेक्ष्य में इन विद्वानों ने सुझाव दिया कि–

- इन दोनों पुस्तकों में प्रतिनिधित्व करने वाले लोग एक सामान्य भाषाई थे। वे पश्चिम एशिया और ईरान से भारतीय उपमहाद्वीप में चले गए। इन लोगों को 'आर्य' कहा जाता था।
- आर्यों का एक सामान्य मूल घर था, जहाँ से विभिन्न समूह यूरोप और पूर्व में चले गए।

यद्यपि, आर्यों के मूल घर के बारे में बहस अब नहीं है। मान्य है, क्योंकि आर्यों के लिए एक समान नस्लीय पहचान की अवधारणा अब झूठी सिद्ध हो रही है। लेकिन एक

सामान्य भाषाई पहचान को अभी भी इतिहासकार मानते हैं और इस आधार पर, उनमें से कुछ अभी भी आर्य प्रवास के सिद्धांत पर जोर देते हैं।

11.2.2 पुरातत्व स्रोत

पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान में उत्खनन करने पर पिछले 40 वर्षों में सिंधु और घग्गर नदियों ने इन क्षेत्रों से कई हड़प्पा/ताम्र पाषाण कालीन बस्तियों का पता लगाया है। इन्हें दिनांकित किया गया है 1700 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक, ताम्रपाषाण संस्कृतियों को लेट हड़प्पा, ओसीपी (ओचर कलर्ड पॉटरी), बीआरडब्ल्यू (ब्लैक–एंड–रेड वेयर) और पीजीडब्ल्यू (पेन्टेड ग्रे वेयर) भी कहा जाता है।

11.3 वेदकालीन अर्थ व्यवस्था

प्रारंभिक वैदिक समाज देहाती था और पशुपालन उनका प्रमुख व्यवसाय था। एक देहाती समाज कृषि की तुलना में अपने पशु धन पर अधिक निर्भर करता है । इसलिए पशुचारण एक निर्वाह रणनीति थी जो वहाँ के लोगो द्वारा अपनाई गई एवं ऐसे क्षेत्र जहाँ पर्यावरण और कुछ सांस्कृतिक बाधाओ के कारण बडे पैमाने पर कृषि संभव नहीं थी ।

ऋग्वेद के श्लोकों में मवेशियों के महत्त्व के व्यापक प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेद में कई भाषाई भाव गाय (गौ) के साथ जुड़े हुए हैं। मवेशी धन का मुख्य मापक और एक धनी व्यक्ति जिसके पास कई मवेशी थे, उसे 'गोमत' कहा जाता था। संघर्षों के लिए प्रयोग की जाने वाले शब्दों और युद्धों को इस काल में गविष्टी, गिवेसन, गव्यत आदि नामो से जाना जाता था ।

गविष्टी का अर्थ है 'गायों की खोज करना'। ये शब्द स्वयं सुझाव देते हैं कि मवेशियों पर अधिकार समूहों के बीच विवाद के कारण थे और कभी–कभी अंतर्जातीय झगड़े और संघर्ष का कारण भी बनते थे। पाणि, जो वैदिक लोगों के शत्रु थे, ऋग्वेद में कहा गया है कि उन्होंने अपनी संपत्ति और ज्यादातर गायों को पहाड़ और जंगल मे छिपा रखा था। इन मवेशियों को छोड़ने के लिए वैदिक देवता इंद्र का आह्वान किया गया था। यह संदर्भ बताता है कि मवेशी अपहरण आम था। राजा या प्रमुख को श्गोपतिश या गायों की रक्षा करने वाला कहा जाता था। ऋग्वेद में गोधुली का प्रयोग समय की एक माप के लिए किया गया है। दूरी को गव्युति कहते हैं।

संबंधियों को गोत्र कहा जाता है। ये सभी शब्द गौ शब्द से व्युत्पन्न हुए हैं और सामाजिक सम्बन्धों का सुझाव देते हैं और ऋग्वैदिक जीवन के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र गाय पालन के इर्द–गिर्द केंद्रित थे। अधिकांश संदर्भ कृषि के लिए बाद के कालखण्ड के हैं। 'यव' या जौ के अलावा कोई अन्य अनाज उल्लिखित नहीं है।

प्रारंभिक वैदिक लोग लोहे की तकनीक का उपयोग नहीं करते थे। कॉपर, के साथ जिससे वे परिचित थे, कृषि कार्यों में उनका उतना मूल्य नहीं था जितना लोहे के औजारों का था । पत्थर के औजार (जैसे कुल्हाड़ी) का उपयोग किया जाता था और इनका उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है । आग का उपयोग जंगल के आवरण को जलाने और स्थानांतरित कृषि करने का अभ्यास किया गया । इसके अलावा, चर्चा के तहत क्षेत्र में कम वर्षा हुई और ऋग्वेद में वर्णित सभी नदियाँ अर्थात सतलुज, सिंधु, घग्गर, रावी आदि हैं। इन नदियों को अपने मार्ग को बार–बार बदलने के लिए जाना जाता है। बड़े पैमाने पर सिंचाई की सुविधाओं के बिना जो इस काल में विकसित नहीं

हुई थी इस कारण नदियों के निकट की जलोढ़ भूमि की खेती स्थायी रूप से नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार कुदाल, दरांती और कुल्हाड़ियों का उपयोग ग्रंथों में उल्लिखित हैं। पशुचारण के साथ–साथ स्थानान्तरित खेती के प्रमाण से पता चलता है कि लोग या तो खानाबदोश थे या अर्ध–खानाबदोश थे। वे अपने गाँव से बाहर चले गए और अपने मवेशियों को खिलाने के लिए एक निश्चित अवधि के लिए अपने झुंडों के साथ गाँव से बाहर चले गए।

साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों से पता चलता है कि लोगों ने नेतृत्व नहीं किया ओर पूरी तरह से गतिहीन जीवन व्यतित किया।

उपहारों के आदान–प्रदान और पुनर्वितरण की समाज में एक महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका थी।

जनजातीय संघर्षों ने उन्हें श्रद्धांजलि और प्रतिष्ठा प्रदान की, अर्थात् बली, पराजित या अधीनस्थ समूहों द्वारा विजयी प्रमुख युद्ध में। बाकि की विजयी जनजाति के कुलों का लूट में हिस्सा था और औपचारिक अवसरों के दौरान मुखिया अपने कुलों को भोजन कराया करते थे एंव उपहार दिया करते थे। जिससे वे प्रतिष्ठा प्राप्त करते थें ।

प्रारंभिक वैदिक समाज में व्यापार और वाणिज्य के साक्ष्य अल्प हैं। वहाँ पर भूमि–स्वामित्व पर आधारित निजी संपत्ति की अवधारणा नहीं थी ।

11.3.1 वेदकालीन राज्यव्यवस्था

जनजातीय राज्य व्यवस्था पूर्णतः समतावादी नहीं थी। ऋग्वेद में ही एक विभाजन पाया जाता है, जिसे दो समूहों के संदर्भ में देखा जाता है – राजन्य, या जो युद्ध लड़े, और उन्हें वरिष्ठ वंश माना जाता है, और शेष कुल या विस, जिन्होंने गठन किया कनिष्ठ वंश हालांकि कोई भी समूह एक अलग सामाजिक पदानुक्रम निर्मित नही हो सकी, निरंतर संघर्ष और अंतर–जनजातीय युद्धों ने समाज में एक विभाजन बनाने में मदद की। अधिक चारागाह भूमि की बढ़ती आवश्यकता, लोगों की सुरक्षा और उनकी बस्ती के लिए एंव मवेशियों की बढ़ती आवश्यता ने अंतर–जनजातीय संघर्षों और युद्ध में वृद्धि के लिए कुलों ने बड़े पैमाने पर योगदान किया। युद्धों में योद्धा समूहों की सहायता के लिए यज्ञ या बलिदान किये जाते थे। इन यज्ञों में कार्यवाहक पुजारी या पुरोहित ने अपने कुलों और भगवान के बीच मध्यस्थ के रूप में काम किया। युद्धो में उन्होंने अपने आदिवासी प्रमुख की सफलता के लिए देवताओं के आशीर्वाद का भी आह्वान किया। प्रारंभ में, पूरे कुल ने इन यज्ञों में समान रूप से भाग लिया इन यज्ञो में धन, भोजन आदि का बड़े पैमाने पर वितरण किया जाता था।

सदस्यों को समान हिस्सा मिलता था। लेकिन बढ़ती घटनाओं के साथ संघर्ष और लड़ाई, यज्ञ या बलिदान भी महत्वपूर्ण हो गए और पुरोहितों ने समाज में विशेष स्थान प्राप्त किया। इस अवधि के बाद पुरुहितो ने राजाओं से उपहारों का एक बड़ा हिस्सा और अन्य कबीले के सदस्यों की तुलना में एक श्रेष्ठ स्थान ग्रहण किया। युद्ध आदि के कारण राजा के पद का भी महत्व हो गया। वरिष्ठ और कनिष्ठ वंश के बीच विभाजन तेज हो गया। किस समय के साथ ये राजनीतिक भेद स्पष्ट हो गए, यह बताना जटिल है, लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि ऋग्वेद के 10वां मण्डल में 'पुरुष सूक्त' है, और उत्तर वैदिक ग्रंथों में हमें श्रेष्ठ राजन्य समुह का प्रमाण मिलता है। वे अपने आप में, क्षत्रिय का दर्जा मानते हुए, एक अलग वर्ण के रुप में स्थापित हुए। यह विकास 1000 ईसा पूर्व के बाद हुआ। इसका मतलब यह नहीं है कि समाज

हमारे अध्ययन की अवधि के दौरान स्थिर था। वास्तव में यह धीरे–धीरे लेकिन निश्चित रूप से बदल रहा था जो विकास के लिए अग्रणी था । बाद के वैदिक काल में, एक जटिल सामाजिक–राजनीतिक संरचना का रूप ले रहा था ।

जनजातीय सभाएं उदा. गण, विदथ, सभा और समिति का उल्लेख है ऋग्वेद में। सभा चुनिंदा कबीले सदस्यों की परिषद हो सकती है और समिति में संभवतः पूरा कबीला शामिल था। इन विधानसभाओं ने सरकार और प्रशासन के कार्यों को सम्पन्न किया और कुलों में राजा के चयन मे भी सम्मिलित हुए। इस प्रकार उन्होने क्षत्रियों की शक्ति को उचित सीमा में बनाए रखा।

जैसा कि पहले कहा गया है, प्रारंभिक वैदिक व्यवस्था में परिभाषित राजनीतिक पदानुक्रम, के दौरान परिवर्तन अवधि ने एक सामाजिक–राजनीतिक पदानुक्रम को जन्म दिया जो मूल रूप से प्रकट हुआ उत्तर वैदिक काल के दौरान वर्ण व्यवस्था के रुप में। प्रारंभिक वैदिक समाज आदिवासी मूल्यों और मानदंडों द्वारा शासित और काफी हद तक समतावादी था।

सुपरिभाषित राजनीतिक पदानुक्रम प्रारंभिक वैदिक व्यवस्था में स्पष्ट रुप से नही पाया गया है। परिवर्तन अवधि के दौरान एक सामाजिक, राजनीतिक, पदानुक्रम का जन्म हुआ जो मूल रुप से उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के रुप में प्रकट हुआ।

वेद काल की विधि तथा न्याय व्यवस्था के विषय में स्पष्ट जानकारी का अभाव है। न्याय का कार्य संभवतः पुरोहित की सहायता से राजा ही करता था। चोरी बेईमानी धोखाधड़ी आदि अपराध और अपराधियों के उदाहरण मिलते हैं। रात में पशुओं की चोरी करना एक आम अपराध था। मृत्युदंड की प्रथा नहीं थी, शारीरिक दंड दिए जाते थे तथा जुर्माने आरोपित किए जाते थे । हत्या करने के अपराध में धन दान द्वारा मुक्त होने की प्रथा थी। अपराधी को खूंटे से बांधने का भी जिक्र हुआ है। राजा कोई नियमित या स्थाई सेना नहीं रखता था लेकिन युद्ध के समय वह नागरिक सेना संगठित कर लेता था। जिसका कार्य–संचालन व्रत, गण, ग्राम और सरधा नाम से विभिन्न कबीलाई टोलियां करती थी । कुल मिलाकर यह कबिलाई ढंग का शासन था जिसमें सैनिक तत्व प्रबल था।

वेद काल में सेनानी, पुरोहित तथा ग्रामणी के अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी जैसे – सूत, रथकार तथा कर्मार भी होते थे जिन्हें रत्नी कहा जाता था । एक राज्य में राजा समेत कुल 12 रत्नी होते थे, जो राज्याभिषेक के अवसर पर अनिवार्य रूप से उपस्थित होते थे। उल्लेखनीय है कि वेद काल में मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद् का उल्लेख नहीं किया गया है, ऋग्वेद में मध्यमशि शब्द से ज्ञात होता है कि न्याय प्रक्रिया में मध्यस्थों की भूमिका होती थी। वैदिक कालीन न्यायाधीशों को प्रश्नविनाक कहा जाता था। उग्र तथा जीवग्रह संभवतः पुलिस कर्मचारी होते थे । ऋग्वेद में विदथ नामक संगठन का भी उल्लेख मिलता है, जिसके बारे में माना जाता है कि इन सभी संस्थाओं में यह सर्वाधिक प्राचीन संस्था थी और इसमें महिलाएं भी भाग लेती थी। यह स्थिति शासन के प्रगतिशील स्वरूप का चित्रण करती है। इस प्रकार वैदिक कालीन समाज में लैंगिक समानता के अंश दिखाई पड़ते हैं। दैनिक राजकाज एवं प्रशासन में कुछ अधिकारी राजा की सहायता करते थे । इनमें पुरोहित सबसे महत्वपूर्ण होता था। इसके अतिरिक्त सेनानी, व्राजपति (कृषि का अधिकारी) ग्रामणी स्पश (जासूस) आदि भी होते थे, यह भी राजा की सहायता करते थे।

11.3.2 वेदकालीन प्रशासन

आर्यो के प्रशासनिक मशीनरी का केन्द्र आदिवासी मुखिया या राजन होते थें। प्रशासन के काम में, राजा को कई लोगों द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। जैसे पुरोहित (पुजारी) सेनानी (सेना के जनरल), ग्रामानी (गाँव का मुखिया) और पुरोहित जैसे कार्यकर्ता होते थे। पुरोहित राज्य का सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी था। राजा के पास कोई नियमित या स्थायी सेना नहीं थी, लेकिन युद्ध के समय वह जुटाइ गई सैन्य बल से व्यवस्था को बनाये रखते थे। सरकार की जनजातीय व्यवस्था में सैन्य तत्व प्रबल था। सेना में मुख्य रूप से पट्टी (पैदल सेना) और रथिन (रथ योद्धा) शामिल थे। हथियार सैनिकों द्वारा उपयोग किए जाते थे जैसे कि धनुष, तीर, तलवारें, कुल्हाड़ी और भाले थे और ये हथियार लोहे से बने हुए होते थे। सैनिकों को सरधा, व्रत और गण नामक इकाइयों में संगठित किया गया था।

- कर संग्रह के लिए जिम्मेदार किसी भी अधिकारी के प्रमाण नहीं मिलते हैं अर्थव्यवस्था के रूप में नियमित कर के संग्रह की भूमिका मुख्य रूप से देहाती थी, न कि खाद्य उत्पादन की।
- न्याय के लिए कोई विशेष अधिकारी नहीं था। लेकिन चोरी पर नजर रखने के लिए जासूसों को लगाया गया था।
- व्रजपति वह अधिकारी था जिसे एक बड़ी भूमि या चारागाह पर अधिकार प्राप्त था।
- उन्होंने ग्रामवासियों का युद्ध में नेतृत्व किया। धीरे–धीरे ग्रामानी व्रजपति के समान हो गई।

11.3.3 वेदकालीन सामाजिक जीवन

समाज

- नातेदारी सामाजिक संरचना का आधार थी और इसी प्रकार कबाले द्वारा मनुष्य की पहचान तय होती थी, उसके कबीले द्वारा लोगों की अपनी प्राथमिक वफादारी अपनी जनजाति या जन के प्रति होती थी।
- वर्ण शब्द का प्रयोग रंग के लिए किया जाता था जो पहचान चिह्न प्रदान करता था, सामाजिक व्यवस्था के लिए। ऋग्वेद में आर्य और दशा वर्ण का उल्लेख भी है।
- ऐसा लगता है कि आर्य लोगों का रंग गोरा था जबकि स्वदेशी आबादी श्याम वर्ण की थी। आर्यों द्वारा जीते गए दासों और दस्युओं को दास के रूप में माना जाता था।
- पुजारियों को दासों और मुख्य रूप से घरेलू कामों के लिए बनी दासियों को उपहार के रूप में दिया जाता था।
- जनजातियों में सामाजिक असमानता मुख्यतः आदिवासी प्रमुखों के रूप में उभरी और पुजारियों ने भी भूमि का एक बड़ा अधिग्रहण चालू किया।
- धीरे–धीरे समाज का बंटवारा होने लगा अतः तीन समूहों में जो कि – योद्धा, पुजारी और आम लोग के नाम से जाने गए । हालाँकि, व्यवसाय के आधार पर समाज का विभेदीकरण बहुत तेज नहीं था और समाज काफी हद तक आदिवासी और समतावादी था।

11.4 सारांश

इस इकाई में आपने वैदिक काल की राज्य व्यवस्था के बारे में सीखा। वैदिक युग 1500 ईसा पूर्व और 600 ईसा पूर्व के बीच था। यह अगली प्रमुख सभ्यता है जो 1400 ईसा पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के बाद प्राचीन भारत में हुई थी। इसी काल में वेदों की रचना हुई और इसी से इस युग का नाम पड़ा। वेद भी इस युग की जानकारी का प्रमुख स्रोत हैं। वैदिक युग की शुरुआत आर्यों या इंडो–आर्यनों के आने से हुई।

प्रारंभ में, आर्य ''सप्त सिंधु'' (सात नदियों की भूमि) के रूप में जानी जाती थी जिसकी भूमि में आर्य रहते थे। ये सात नदियाँ थी सिंधु (सिंधु), विपाश (ब्यास), वितस्ता (झेलम), परुष्नी (रावी), असिकनी (चिनाब), शुतुद्री (सतलुज) और सरस्वती।

राजनीतिक संरचनाः

ऋग्वैदिक काल में ''जन'' सबसे बड़ी सामाजिक इकाई थी। सामाजिक समूहीकरण इस प्रकार था – कुल (परिवार) – ग्राम – विसु – जन। जनजातीय सभाओं को सभा और समितियाँ कहा जाता था।

सामाजिक संरचनाः

महिलाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। उन्हें सभाओं और समितियों में भाग लेने की अनुमति थी। महिला कवयित्री भी थीं (अपाला, लोपामुद्रा, विश्ववर और घोष)। मवेशी, विशेष रूप से, गाय बहुत महत्वपूर्ण हो गए थे। मोनोगैमी का प्रचलन था लेकिन राजघरानों और कुलीन परिवारों में बहुविवाह मनाया जाता था। इस काल मे बाल विवाह के प्रमाण नहीं मिलते है । सामाजिक भेद मौजूद थे लेकिन कठोर और वंशानुगत नहीं थे।

आर्थिक संरचनाः

इस काल मे लोग चरवाहे और पशुपालन करने वाले लोग थे। वे कृषि का अभ्यास करते थे एंव उनके पास घोड़े के रथ थे। परिवहन के लिए नदियों का उपयोग किया जाता था, सूती और ऊनी कपड़ों को काटा और इस्तेमाल किया जाता था। प्रारंभ में, वस्तु विनिमय प्रणाली के माध्यम से व्यापार किया जाता था, लेकिन बाद में, 'निष्का' नामक सिक्कों का उपयोग किया जाने लगा।

11.5 शब्दावली

- 'गोमत' – जिसके पास कई मवेशी हों।
- 'गोपति' – राजा को गोपति कहा जाता था।
- गोधुली – ऋग्वेद में गोधुली का प्रयोग समय की एक माप के लिए किया गया है।
- ग्रामानी – (गाँव का मुखिया)
- व्रजपति – वह अधिकारी था जिसे एक बड़ी भूमि या चारागाह पर अधिकार प्राप्त था।

11.6 बोध प्रश्न

1. पूर्व–वैदिक या ऋग्वैदिक संस्कृति का काल किसे माना जाता है?
   a. 1500 ई०पू०–1000 ई०पू०
   b. 1000 ई०पू०–600 ई०पू०
   c. 600 ई०पू०–600 ई०
   d. इनमें से कोई नहीं
2. प्रारंभिक आर्यों के बारे में निम्न कथनों में से कौन–सा सही नहीं है?
   a. वे संस्कृत बोलने वाले थे
   b. वे घुड़सवारी किया करते थे
   c. वे कई झुण्डों में भारत पहुँचे
   d. वे मुख्यतः नगरों में निवास करते थे
3. भारत के राजचिन्ह में प्रयुक्त होने वाला वाक्य 'सत्यमेव जयते' किस उपनिषद् से लिया गया है ?
   a. मुण्डक उपनिषद्
   b. कठ उपनिषद्
   c. ईश उपनिषद्
   d. वृहदारण्यक उपनिषद्
4. ऋग्वेद में संपत्ति का प्रमुख रूप क्या है ?
   a. गोधन
   b. भूमि
   c. a एवं b दोनों
   d. इनमें से कोई नहीं
5. प्राचीन भारत में 'निष्क' से जाने जाते थे ?
   a. स्वर्ण आभूषण
   b. गायें
   c. ताँबे के सिक्के
   d. चाँदी के सिक्के

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. a : 1500 ई०पू०–1000 ई०पू०
2. d : वे मुख्यतः नगरों में निवास करते थे
3. a : मुण्डक उपनिषद्
4. a: गोधन
5. a: स्वर्ण आभूषण

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रसाद, एन, 2010 प्राचीन भारत में कर और दंड विधान, पहला संस्करण, नई दिल्ली, त्रिवेणी प्रकाशन.
- महावीर, 2014. वेदों में आर्थिक चिन्तन, पहला संस्करण, नई दिल्ली, प्रगतिशील प्रकाशन.
- कोसंबी, डी.डी. (1987)। ऐतिहासिक में प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता खाका, नई दिल्ली
- थापर, रोमिला (2002)। प्रारंभिक भारत का इतिहास। पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली।
- बाशम, ए.एल. (1986)। वह आश्चर्य जो भारत था। नई दिल्ली।
- डी. पी. अग्रवाल, भारतीय पुरातत्व, 1985।
- एच. सी. रायचौधरी, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, कमेंट्री के साथ बी.एन मुखर्जी, 1996।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 उत्तर वैदिक काल में राज्यव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जानकारी का स्रोत

12.2.1 साहित्यिक स्रोत

12.2.2 ऐखे पुरातत्व स्रोत

12.3 उत्तर वैदिक काल में राज्यव्यवस्था

12.3.1 उत्तर वैदिक काल में प्रशासन

12.3.2 उत्तर वैदिक युग की अर्थव्यवस्था

12.3.4 उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

12.4 सारांश

12.5 शब्दावली

12.6 बोध प्रश्न

12.7 बोध प्रश्न के उत्तर

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस बारे में जानने में सक्षम होंगे–

- स्रोत जो हमें उत्तर वैदिक समाज का अध्ययन करने में सक्षम बनाते हैं ।
- उत्तर वैदिक काल के दौरान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संरचना में परिवर्तन।
- एक नई धातु, यानी लोहा के परिचय के साथ प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव।

12.1 प्रस्तावना

हम उत्तर वैदिक कालीन राज्यव्यवस्था का अध्ययन करने जा रहे हैं जो 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. के मध्य का समय है । इस काल में वैदिक कबीले सप्त सिन्धव क्षेत्र में गंगा की ऊपरी घाटी तथा उसके आस–पास के क्षेत्र में विस्तृत हो गये थे। क्षेत्रीय परिवर्तन के इस काल में आर्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। इस काल में, राजनैतिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टि–गोचर होते हैं। राजतंत्र सशक्त ही नहीं हुआ बल्कि बड़े प्रादेशिक राज्यों की स्थापना भी हुई एवं प्रशासनिक व्यवस्था में भी एक निश्चित पद्धति का आविर्भाव हुआ। पूर्व काल में विभिन्न जन, किसी निश्चित प्रदेश से सम्बद्ध नहीं थे, किन्तु इस काल में जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ले लिया था। ऋग्वेद काल में राजा का प्रभुत्व विश अथवा एक जन के लोगों तक सीमित था, किन्तु अब उसका

स्वामित्व एक राष्ट्र तक विस्तृत हो गया। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासक एक राष्ट्र कहलाता था। अथर्ववेद के अनुसार, एक राष्ट्र सर्वोपरि शासक को कहते हैं, जैसे देश के अधिपति थे।

राजा का पद भी अधिक स्थाई और वंशानुगत हो गया था। इस काल के साहित्य में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें राजा के निर्वाचित होने का संकेत मिलता है। युद्ध अब गायों के लिए न होकर क्षेत्रों के लिए होने लगे।

शतपथ ब्राह्मण का तात्पर्य पूर्वी गंगा के मैदानों में आर्यों के विस्तार से है, अर्थात् आर्यों का विस्तार पंजाब से लेकर पूरे उत्तर प्रदेश तक गंगा–यमुना दोआब से हुआ जल्द ही कुरु साम्राज्य ने दिल्ली के साथ–साथ दोआब के ऊपरी हिस्से पर कब्जा कर लिया और हस्तिनापुर में अपनी राजधानी की स्थापना की। कुरु राज्य पांचाल के साथ एकत्र हो गया जिसने दोआब के मध्य भाग पर कब्जा कर लिया । यह युग कौरवों की भूमि पर प्रसिद्ध महाभारत युद्ध का प्रतीक है, अर्थात् यह कुरुक्षेत्र कहलाया । उत्तर वैदिक काल में, हस्तिनापुर में मिट्टी की संरचनाओं की खोज के रूप में लोगों को जली हुई ईंटों के उपयोग के बारे में शायद ही पता था, परंपराओं से हमें पता चला कि हस्तिनापुर पूरी तरह से बाढ़ में था और कुरु वंश के अवशेष इलाहाबाद के पास कौशाम्बी चले गए। बाद में वैदिक लोग लोहे के हथियारों और घोड़े से खींचे गए रथों के उपयोग के कारण विस्तार के अपने दूसरे चरण में सफल हुए (कर्नाटक के धारवाड़ जिले और गांधार में लगभग 1000 ईसा पूर्व लोहा दिखाई दिया) लोहे को श्यामा या कृष्ण आया (काली धातु) कहा जाता था । कृषि अब प्रमुख थी चावल और गेहूं के साथ आजीविका के साधन लकड़ी के हल के उपयोग के साथ मुख्य फसलें मुख्य रूप से देहाती समाज कृषि प्रधान समाज बन गया । पहली बार वैदिक लोग चावल से परिचित हुए और इसे वृही कहा जाता था ।

12.2 जानकारी का स्रोत

इस काल के अध्ययन के लिए हमें साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों स्रोत मिलते हैं। इस पर विस्तृत चर्चा हम नीचे करेंगें।

12.2.1 साहित्यिक स्रोत

ऋग्वेद संहिता के 10 वें मंडल और साम, यजुर और अथर्ववेद संहिता अन्य वैदिक ग्रंथ हैं जो उत्तर वैदिक काल के रूप में जाने गये । सामवेद संहिता प्रार्थनाओं की एक पुस्तक है, अनुष्ठान के दौरान उन्हें गाने का विधान था। यजुर्वेद में अनुष्ठानों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

यजुर्वेद संहिता इस अवधि के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश का दस्तावेजीकरण करती है। अर्थववेद इस काल की लोक परंपरा को समाहित करता है और लोकप्रिय धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। अथर्ववेद आम लोगों की सामाजिक–धार्मिक स्थितियों को समझने का अच्छा स्रोत है। इन संहिताओं का अनुसरण ब्राह्मण नामक ग्रंथों की एक श्रृंखला द्वारा किया जाता है, जो वेदों पर भाष्य हैं। वे सामाजिक और धार्मिक पहलुओं की व्याख्या करते हैं, अनुष्ठान और वैदिक समाज पर प्रकाश डालते हैं। भौगोलिक चरण का फोकस ऊपरी–गंगा घाटी और मध्य गंगा घाटी के क्षेत्रों पर था, हालांकि अन्य क्षेत्रों का भी उल्लेख किया गया है।

12.2.2 पुरातत्व स्रोत

उत्तर वैदिक काल के लिए नियत अवधि लगभग 1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व तक है। ग्रंथों में कई समुदायों और सांस्कृतिक समूहों का उल्लेख है। साहित्यिक स्रोत बार–बार पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों का उल्लेख करते हैं।

हालाँकि, विशेष मिट्टी के बर्तनों की पहचान किसी जनजाति या समूह के साथ नहीं की जा सकती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि एक ही भौगोलिक क्षेत्र में कुछ कृषि समुदाय लगभग एक ही समयावधि में फले–फूले और ये समुदाय पेंटेड ग्रे वेयर (पी जी डब्ल्यू) नामक एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग किया करते थे। इस प्रकार की ये पुरातात्विक खोज उत्तर वैदिक काल की भौतिक स्थितियों को दर्शाती हैं। ऊपरी–गंगा घाटी के पास 700 से अधिक स्थल पाए गए हैं। उनका वितरण बहावलपुर में घग्गर नदी के सूखे तलों से उत्तरी राजस्थान, सिंधु और गंगा के जलक्षेत्र और गंगा यमुना दोआब तक फैला है। इस पात्र के वितरण की पूर्वी सीमा गंगा के उत्तरी मैदानों तक ही सीमित है। जैसा कि श्रावस्ती का स्थल इंगित करता है दक्षिणी राजस्थान की बनास संस्कृति जो 2000 से 1400 इ.पू. के काल को दर्शाती है, जिसका विस्तार संभवतः 800 ईसा गंगा घाटी तक हो सकता है।

यद्यपि उत्तर वैदिक समाज के साथ–साथ वह समाज जो पुरातत्व में परिलक्षित होता है एक ऐसा समाज था जिसने लोहे का उपयोग किया था। ऋग्वेद में उल्लेख है ''अयस'' जो लोहे को संदर्भित कर सकता है, हालांकि पुरातात्विक साक्ष्य लोहे को उत्तर वैदिक काल से संबंधित करते हैं, और साहित्यिक स्रोत इसकी पर्याप्त पुष्टि करते हैं। यजुर्वेद ''अयस'' को श्याम अयस के रूप में योग्य बनाता है, और ब्राह्मण भी इसकी चर्चा करते हैं, दोनों कृष्ण अयस की बात करते है जो एक काली धातु है जिसका अर्थ है लोहा।

12.3 उत्तर वैदिक कालीन राज्यव्यवस्था

उत्तर वैदिक काल में बड़े राज्यों का निर्माण हुआ । उत्तर वैदिक काल में कई जन या जनजातियों को जनपद या राष्ट्र (इस अवधि में पहली बार प्रकट हुआ शब्द) बनाने के लिए मिला दिया गया । इसलिए, राज्य के आकार के साथ–साथ शाही शक्ति में वृद्धि हुई । युद्ध अब गायों के लिए नहीं बल्कि प्रदेशों के लिए लड़े जाते थे। राजा आमतौर पर क्षत्रिय होता था और राजा का पद लगभग वंशानुगत बना दिया जाता था। प्रमुख या राजा के चुनाव के निशान उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में दिखाई देते हैं लेकिन वंशानुगत राजत्व उभर रहा था। राजा धीरे–धीरे सामाजिक व्यवस्था के नियंत्रक के रूप में भी उभरा। राजा को विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से संबोधित किया जाता था। उदाहरण के लिए, उत्तरी क्षेत्रों में, उन्हें विराट के रूप में जाना जाता था, पूर्वी क्षेत्रों में उन्हें सम्राट कहा जाता था, जबकि पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रों में उन्हें क्रमशः स्वारत और भोज के रूप में संबोधित किया जाता था।

राजा के प्रभाव को अनुष्ठानों द्वारा बढ़ाया गया था। उन्होंने राजसूय (जो उन्हें सर्वोच्च शक्ति प्रदान करने के लिए माना जाता था), अश्वमेध (उस क्षेत्र पर पूर्ण शक्ति देने के लिए जहां शाही घोड़ा दौड़ाया जाता था), और वाजपेय (जहां शाही रथ दूसरों के विरुद्ध, और जीतने के लिए बनाया गया था) जैसे विभिन्न अनुष्ठान किए जाते थे । इन अनुष्ठानों से राजा की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी । उत्तर वैदिक काल में, लोकप्रिय सभाओं ने अपना महत्व खो दिया और इसकी कीमत पर शाही शक्ति में

वृद्धि हुई। विधाता पूरी तरह से गायब हो गये। सभा और समिति ने जमीन पर कब्जा करना जारी रखा, लेकिन उनका चरित्र बदल गया। वे राजकुमारों और अमीर रइसों के प्रभुत्व में आ गए। महिलाओं को अब सभा में बैठने की अनुमति नहीं थी और अब यहां रईसों और ब्राह्मणों का प्रभुत्व था।

शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में एक राजवंश की दस पीढ़ियों तक के उत्तराधिकार का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि राजत्व वंशानुगत था। राजत्व के स्थाई तथा वंशानुगत होने से राजा के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि होना स्वाभाविक था। राजा को प्रजापति का प्रतिनिधि कहा गया। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रसंग है कि इन्द्र की स्थिति देवताओं में बहुत निम्न थी किन्तु प्रजापति ने उसे देवताओं का राजा नियुक्त किया। इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के सम्पादन द्वारा राजा प्रजापति के समान प्रभुत्व सम्पन्न हो जाता है। तथापि राजत्व प्रतिष्ठा का आधार जनमत था। अथर्ववेद में राजा को पदमुक्त किये जाने एवं राज्य से बहिष्कृत होकर दूसरे क्षेत्र में विचरण करने का विवरण मिलता है। कहा जा सकता है कि राजा के मानवीय स्वरूप को भुलाया नहीं गया था। राजा के वंशानुगत होने से वह स्वच्छन्द रूप से कार्य करता था परन्तु उसे निरंकुश नहीं माना जा सकता।

इस काल में राजा की शक्ति पर कतिपय सीमाएँ थीं–

- राजा की शक्ति असीमित नहीं थी क्योंकि करारोपण पद्धति नियमित होने के बावजूद उत्पादन प्रणाली विकसित नहीं हो पाई थी, इसलिए राजा के खजाने में अपेक्षित धन नहीं पहुँच पाता था।
- स्थायी सेना का अभाव था।
- राजसूय यज्ञ में एक परंपरा थी, जिसमें राजा द्वारा राज्य के रत्नियों को हवि प्रदान की जाती थी। यहाँ राजा उनके घर जाकर उनका समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करता था।
- राजा की स्वेच्छाचारिता पर रीति एवं परंपरा का अंकुश भी था। इसके अतिरिक्त वैदिक राजनीति में ब्रह्म का वाहक ब्राह्मण और क्षत्र का वाहक क्षत्रिय माना जाता था। ब्राह्मण अपना राजा सोम को मानता था।
- कुछ हद तक सभा एवं समिति भी राजा की शक्ति पर नियंत्रण करती थी। यद्यपि उत्तर वैदिक काल में इनकी स्थिति में कुछ गिरावट आयी थी। उत्तर वैदिक काल में समिति की तुलना में सभा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई। अथर्ववेद में एक जगह सभा के सदस्यों को नरिष्ठा कहा गया है। इसका आशय सामूहिक वाद–विवाद होता है ।

12.3.1 उत्तर वैदिक काल प्रशासन

उत्तर वैदिक काल में भी राजाओं के पास स्थायी सेना नही थी, युद्ध के समय आदिवासी इकाईयों को एकजुट किया जाता था । राजा को भी उसी थाली में भोजन करना पडता था जिसमें उसकी प्रजा भोजन करती थी । करों और श्रद्धांजलि का संग्रह आम हो गया।

जब कर की प्रणाली नियमित हो गई तो ऋग्वैदिक प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन हो गया। अधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई। कुछ–एक अधिकारियों की शक्ति में कटौती भी हुई। उदाहरण के लिए ग्रामणी नामक अधिकारी की शक्ति में वृद्धि हुई एवं

विशपति नामक अधिकारी की शक्ति में कटौती हुई। शतपथ ब्राह्मण में रत्निनों की चर्चा है। रत्नियों की संख्या 12 थी, यथा–

1. सेनानी, 2. पुरोहित, 3. युवराज, 4. महिषि (रानी), 5. सूत (राजा का सारथी), 6. ग्रामणी (ग्राम का मुखिया), 7. क्षतृ या प्रतिहारी (द्वारपाल), 8. संगृहित्री (कोषाध्यक्ष), 9. भागदुघ (कर–संग्रहकर्ता), 10. अक्षवाप (पासे के खेल में राजा का सहयोगी), 11. पालागल (राजा का मित्र दूत या विदूषक का पूर्वज) (संदेशवाहक) और 12. गोविकर्तन (गवाध्यक्ष अथवा जंगलाधिपति) पंचविश ब्राह्मण में रत्निनों को वीर कहा गया है। इससे उनके महत्त्व का बोध होता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारियों को भी चर्चा मिलती है।

12.3.2 उत्तर वैदिक युग की अर्थव्यवस्था

(द पेंटेड ग्रे वेयर, पीजीडब्ल्यू – आयरन फेज कल्चर)

कृषि आजीविका का मुख्य साधन था और लोग वैदिक युग के अंत में एक व्यवस्थित जीवन व्यतीत करते थे। लकड़ी के हल के फाल से जुताई की जाती थी। शतपथ ब्राह्मण जुताई की रस्मों के बारे में विस्तार से बताता है। यहाँ तक कि राजा और राजकुमार भी शारीरिक श्रम करने से नहीं हिचकिचाते थे। कृष्ण के भाई बलराम को हलधारा या हल चलाने वाला कहा जाता है। हालांकि, बाद के समय में ऊपरी वर्णों के लिए जुताई पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।

वैदिक लोगों ने जौ का उत्पादन जारी रखा, लेकिन इस अवधि के दौरान चावल (वृही) और गेहूं (गोधुमा) उनकी प्रमुख फसलें बन गईं। बाद के समय में, गेहूं पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लोगों का मुख्य भोजन बन गया। उत्तर वैदिक काल में भी विभिन्न प्रकार की दालों का उत्पादन होता था। कृषि उपज को अनुष्ठानों (विशेषकर चावल) में उपयोग किया जाने लगा । इस अवधि (लगभग 1000 ईसा पूर्व) में लोहे का बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया था, और इसने लोगों को जंगलों (ऊपरी गंगा घाटी) को साफ करने और खेती के लिए अधिक भूमि लाने में सक्षम बनाया । बाद के वैदिक ग्रंथों में धातु को श्यामा या कृष्ण अयस कहा गया है।

उत्तर वैदिक युग के दौरान विविध कला और शिल्प का प्रसार हुआ और शिल्प विशेषज्ञता ने गहरी जड़ें जमा लीं। बाद के वैदिक लोग अच्छे लोहार और गलाने वाले थे क्योंकि पीजीडब्ल्यू स्थलों पर तांबे की बहुत सारी वस्तुएं मिली हैं। लोगों को टिन, सीसा, चांदी, कांस्य, सोना, लोहा और तांबा के बारे में पता था। इस अवधि में कई व्यावसायिक समूहों का उल्लेख किया गया है जैसे, पत्थर तोड़ने वाले, जौहरी, ज्योतिषी, चिकित्सक आदि। कुल मिलाकर, वैदिक ग्रंथ और उत्खनन दोनों ही विशेष शिल्प की खेती का संकेत देते हैं। समाज मुख्यतः ग्रामीण था। हालाँकि, अवधि के अंत में, शहरीकरण की शुरुआत के चिह्न हैं, क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यक में एक शहर के अर्थ में प्रयोग किए गए शब्द का उल्लेख किया गया है। विनिमय अभी भी वस्तु विनिमय के माध्यम से होता था परन्तु उसका उपयोग मूल्य की एक सुविधाजनक इकाई के रूप में किया जाता था। यद्यपि यह एक विशिष्ट मुद्रा के रूप में नहीं होता था।

12.3.4 उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक जीवन

उत्तर वैदिक समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था जिन्हें ब्राह्मण, राजन्य या क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता था। बलि के बढ़ते पंथ ने ब्राह्मणों की शक्ति में

बहुत वृद्धि की। वे अपने ग्राहकों के लिए और खुद के लिए अनुष्ठान और बलिदान करते थे, और कृषि कार्यों से जुड़े त्योहारों में भी भाग लेते थे। तीनों उच्च वर्णों में एक समान विशेषता थी – वे वैदिक मंत्रों के अनुसार उपनयन या पवित्र धागे के साथ अलंकरण के हकदार थे। चौथा वर्ण पवित्र धागा समारोह से वंचित था। इस अवधि में शूद्रों पर कुछ निषेधों को लागू करने की शुरुआत देखी गई। राजन्य आदेश का प्रतिनिधित्व करने वाले राजकुमारों ने अन्य सभी तीन वर्णों पर अपनी शक्ति का दावा करने का प्रयास किया । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, राजकुमार के संबंध में, ब्राह्मण को आजीविका के साधक और उपहारों के स्वीकारकर्ता के रूप में वर्णित किया गया है । वैश्य को श्रद्धांजलि देने को कहा जाता है, और सबसे खराब स्थिति शूद्र के लिए आरक्षित होती है। वह दूसरे का सेवक कहलाता है, जो दूसरे के द्वारा अपनी इच्छा से काम करने के लिए और इच्छा पर पीटे जाने के लिए कहा जाता है। परिवार में, एक पितृसत्तात्मक (पिता का अधिकार) प्रणाली विकसित हुई और महिलाओं को आम तौर पर निम्न स्तर दिया गया । यद्यपि कुछ महिला धर्मशास्त्रियों ने दार्शनिक चर्चाओं में भाग लिया और कुछ रानियों ने राज्याभिषेक अनुष्ठानों में भाग लिया, आमतौर पर महिलाओं को पुरुषों से हीन और अधीनस्थ माना जाता था। सती और बाल विवाह का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, एक बेटी को दुख का स्रोत बताया गया है। गोत्र की संस्था उत्तर वैदिक युग में दिखाई दी। शाब्दिक रूप से, इसका अर्थ है ष्गाय की कलमष् या वह स्थान जहाँ पूरे कबीले के मवेशी रखे जाते हैं, लेकिन समय के साथ, यह एक सामान्य पूर्वज से वंश का संकेत देता है। एक ही गोत्र या एक ही पूर्वज वाले व्यक्तियों के बीच कोई विवाह नहीं हो सकता था । जाति के बाहर विवाह व्यापक रूप से प्रचलित था। एक ही गोत्र की महिलाओं से विवाह करने वाले पुरुषों के लिए चान्द्रायण तपस्या का उल्लेख है। गोत्रों का नाम कश्यप, भारद्वाज, गौतम, भृगु जैसे महान ऋषियों के नाम पर रखा गया था।

वैदिक काल में आश्रम या जीवन के चार चरण अच्छी तरह से स्थापित नहीं थे। उत्तर–वैदिक ग्रंथों में, हम चार आश्रमों के बारे में सुनते हैं– ब्रह्मचारी (छात्र), गृहस्थ (गृहस्थ), वानप्रस्थ (आंशिक सेवा निवृत्ति), और संन्यास (संसार से पूर्ण सेवा निवृत्ति) परन्तु उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों में केवल तीन का उल्लेख किया गया है, अंतिम एक या चौथा चरण उत्तर वैदिक काल में अच्छी तरह से स्थापित नहीं हुआ था । बाद के वैदिक युग में, रथकारों जैसे कुछ शिल्प समूहों को एक विशेष दर्जा प्राप्त था और उन्हें पवित्र धागा पहनने का अधिकार था।

12.4 सारांश

उत्तर वैदिक काल में आर्य सभ्यता पंजाब से सम्पूर्ण गंगा यमुना दोआब में फैल गई, उत्तर वैदिक काल आते–आते पन्चजन्यों का लोप हो गया तथा उनके स्थान पर विशाल राज्यों की स्थापना हुई, जिनमें कुरू तथा पंचाल सबसे अधिक प्रचलित थे । कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था, कबायली की सरंचना में दरार पड़ना, वर्ण व्यवस्था की जटिलता बढ़ना, क्षेत्रगत राज्यों का उदय तथा धार्मिक कर्मकांडों की प्रधानता इस काल की प्रमुख विशेषताएं थी। तकनीकी विकास के दृष्टिकोण से लोहे का प्रयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयोग था। आरम्भ में इसका उपयोग अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में हुआ, परन्तु धीरे धीरे इसका व्यवहार कृषि एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी होने लगा। इन परिवर्तनों का प्रभाव सभ्यता और संस्कृति पर व्यापक रूप से पड़ा। लोहे को कृष्ण अयस कहा जाता था। लोहे के उपकरणों के प्रयोग से गंगा यमुना के

दोआब क्षेत्र को साफ करना अधिक सुगम हो गया तथा आर्यों का विस्तार गंगा यमुना दोआब के अंतर्गत समूचे भारत में हो गया । इस समय ऋग्वैदिक कालीन अनेक छोटे छोटे कबीले एक दूसरें में विलीन होकर क्षेत्रगत जनपदों में बदलने लगे थे । सभा और समिति नामक सभाओं का प्रभुत्व कम हो गया, और राजा की शक्ति में वृद्धि होने लगी । स्त्रियों को सभा की सदस्यता से बहिस्कृत कर दिया गया । राष्ट्र शब्द जिसका अर्थ प्रदेश या क्षेत्र होता है, सर्वप्रथम इसी समय प्रयोग में आया, उत्तर वैदिक काल में पांचाल सर्वाधिक विकसित जनपद था । शतदल ब्राह्मण में इन्हें वैदिक सभ्यता का सर्वश्रेष्ट प्रतिनिधि कहा गया हैं । राजकीय प्रशासन में आए परिवर्तन तथा कर्मकांडों के विधानों जैसे राजसूय, अश्वमेघ, वाजपेय आदि यज्ञों ने राजा की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाया ।

12.5 महत्त्वपूर्ण शब्दावली

- महिषी – राजा की पटरानी महिषी कहलाती थी जो प्रशासनिक कार्यो में राजा की सहायक एवं सलाहकार के रूप में काम करती थी.
- पुरोहित – राजा का प्रमुख सलाहकार युद्ध में राजा के साथ जाता था, जो समस्त धार्मिक कार्यों में सहभागी होता था।
- युवराज – राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को इस पद पर आसीन कर उसे उतराधिकारी के रूप में प्रशासनिक कार्यों में निपुण करने का प्रयास करता था।
- सूत – रथों के निर्माण, रखरखाव हेतु पदाधिकारी।
- सेनानी – सेना का प्रधान पदाधिकारी।
- ग्रामिणी – ग्राम शासन का प्रधान पदाधिकारी।
- क्षत्रि – राजप्रासादों की सुरक्षा हेतु पदाधिकारी।
- संग्रहीत्र – राज्य का कोषाध्यक्ष।
- भाग्दुध – भूमि कर की वसूली हेतु पदाधिकारी।
- अक्षवाप – जुआ आदि पर निगरानी रखने वाला।

12.6 बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित में से कौन उत्तर वैदिक काल में पशु का देवता था?

   a. इंद्र

   b. रुद्र

   c. विष्णु

   d. प्रजापति

2) वैदिक काल में एक 'सभा' थी ?

   a. गांवों में पेशेवर पुरुषों की संस्था

   b. शाही दरबार

   c. मंत्री परिषद

   d. राज्य के सभी नागरिकों की राष्ट्रीय सभा।

3) वैदिक काल में राजा लोगों से जो कर वसूल करते थे, उसे कहते हैं

a. बली

b. विदथ

c. वर्मन

d. काड़ा

4) उत्तर वैदिक युग को किस..... के संकलन का युग कहा जाता है

a. संहिता

b. ब्राह्मण

c. आरण्यक

d. सभी

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. A : रुद्र
2. D : राज्य के सभी नागरिकों की राष्ट्रीय सभा
3. A : बली
4. D : सभी

व्याख्याः उत्तर वैदिक युग का अर्थ है संहिताओं, ब्राह्मणों और आरण्यकों के संकलन का युग।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रसाद, एन, 2010 प्राचीन भारत में कर और दंड विधान, पहला संस्करण, नई दिल्ली त्रिवेणी प्रकाशन।
- महावीर, 2014, वेदों में आर्थिक चिन्तन, पहला संस्करण, नई दिल्ली प्रगतिशील प्रकाशन।
- कोसंबी, डी.डी. (1987), ऐतिहासिक में प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, खाका, नई दिल्ली।
- थापर, रोमिला (2002), प्रारंभिक भारत का पेंगुइन इतिहास, मूल से ई. 1300 तक नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स।
- बाशम, ए.एल. (1986), वह आश्चर्य जो भारत था, नई दिल्ली।
- डी. पी. अग्रवाल, भारतीय पुरातत्व, 1985।
- एच. सी. रायचौधरी, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, कमेंट्री के साथ बी.एन मुखर्जी, 1996।

इकाई 13 कौटिल्य अर्थशास्त्र में कल्याणमय राज्य का प्रारूप

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 कौटिल्य अर्थशास्त्र का सामान्य परिचय

13.2.1 रचनाकाल एवं रचनाकार

13.2.2 वर्ण्य–विषय

13.3 कल्याणमय राज्य का प्रारूप

13.3.1 सप्तप्रकृतियाँ

13.0 उद्देश्य

- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप–
- आचार्य कौटिल्य के व्यक्तित्व व उनके विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- कौटिल्य अर्थशास्त्र के वर्ण–विषयों को भलीभांति समझ सकेंगे।
- आचार्य कौटिल्य द्वारा दिए गए राज्य–प्रबन्धन विषयक उपदेशों को अपने भाषा में लिख सकेंगे।
- कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित कल्याणमय राजव्यवस्था के प्रारूप से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- कौटिल्य अर्थशास्त्र में उल्लेखित राजव्यवस्था, नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्य तथा नीतियों आदि की वर्तमान परिवेश में प्रासंगिकता पर विचार–विमर्श करने हेतु सक्षम हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

भारत में सुनियोजित राज्य व्यवस्था लागू करने के लिए उपदेश देने वाले प्रथम विचारक आचार्य कौटिल्य का भारतीय राजनीति में बहुत बड़ा योगदान है। यही कारण है कि आचार्य कौटिल्य को भारतीय राजनीतिक विचारों का जनक माना जाता है। राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए आचार्य कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धांत, जिसके अंतर्गत उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र से संबंधित सात अंगों का वर्णन किया। जिस प्रकार मनुष्य के सारे उपकारी होते हैं उसी प्रकार ये सातों अंग किसी भी देश की राज्य व्यवस्था को चलाने के लिए नितांत आवश्यक है। कौटिल्य द्वारा दिए गए उपदेशों का वैशिष्ट्य इस कारणवश बहुत अधिक है क्योंकि यह एक कल्याणमय राज्य के निर्माण हेतु अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

13.2 कौटिल्य अर्थशास्त्र का सामान्य परिचय

मनुष्य के अर्थसंबंधी कार्यों का क्रमबद्ध ज्ञान कराने वाला ग्रंथ अर्थशास्त्र कहलाता है।

यह अर्थशास्त्र शब्द संस्कृत शब्दों अर्थ (धन) एवं शास्त्र की संधि से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'धन का अध्ययन'। जीवन दर्शन के चार प्रमुख चरम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को माना गया हैं। इनमें अर्थ द्वितीय स्थान पर आता है। अर्थशास्त्र जीवन के इसी द्वितीय लक्ष्य 'अर्थ' का वर्णन करने के कारण अपना विशेष महत्व रखता है। अर्थशास्त्र अर्थ प्राप्ति संबंधित चिंतन एवं राजनीति के सारभूत अंगों की व्याख्या करने वाला एक विचित्र ग्रंथ होता है। अर्थशास्त्र जहाँ एक ओर शासन तंत्र के सुचारू रूप से संचालन हेतु राजनैतिक प्रबंधनों का नियोजन करता है वहीं दूसरी ओर शासन तंत्र को ऊर्जा प्रदान करने हेतु ईंधन रुपी अर्थ शक्ति के वैशिष्ट्य को भी प्रतिपादित करता है।

जिस प्रकार सभी विद्याओं का उत्पत्ति स्थल वेद को माना गया है, उसी प्रकार अर्थशास्त्र का भी उद्भव स्थल वेद को ही माना जाएगा। चार उपवेद अति प्राचीन काल में बनाए गए थे। इन चारों उपवेदों में अर्थवेद भी एक उपवेद माना जाता है, परन्तु अब यह उपलब्ध नहीं है। देव गुरु बृहस्पति अर्थशास्त्र के प्राचीनतम आचार्य माने जाते हैं। इस समय बार्हस्पत्य तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र उपलब्ध हैं। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र सूत्रों के रूप में प्राप्त है, परन्तु उसमें अर्थशास्त्र सम्बन्धी सब बातों का समावेश नहीं है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही एक ऐसा ग्रंथ है जो अर्थशास्त्र के विषय पर उपलब्ध क्रमबद्ध ग्रंथ है, इसलिए इसका महत्व सबसे अधिक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र राजनीति और अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें भारतीय चिन्तन की पराकाष्ठा प्रतिबिम्बित होती है। इसकी विषयगत महत्ता एवं व्यापकता भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है।

रचनाकाल–

कौटिल्य अर्थशास्त्र के रचनाकाल के संबंध में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसकी रचना चंद्रगुप्त मौर्य के राज्य काल में हुई। मौर्य कालीन ऐतिहासिक तथ्यों से यह बात प्रमाणित होती है कि चंद्रगुप्त के समय में चाणक्य, विष्णुगुप्त एवं कौटिल्य नाम के कोई व्यक्ति विद्यमान थे। विष्णु पुराण, ब्रह्मांड पुराण आदि के आधार पर यह पता चलता है कि चंद्रगुप्त चाणक्य के समीप्य थे। मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक कथाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि नंद वंश का नाश कर मौर्य वंश की नींव डाली तथा 321 ई०पू० में चंद्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर अरुण किया, चाणक्य ने सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य को न केवल राजा के पद पर आसीन किया अपितु राज्य कार्य के संचालन हेतु कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना की। इस कारण यह अनुमान लगाया जाता है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना भी इसी समय हुई।

इसके अतिरिक्त कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित तथ्यों की साम्यता याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित तथ्यों से होने के कारण यह कहा जाता है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद हुई। महर्षि याज्ञवल्क्य का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के मध्य होने की बात इतिहासकारों द्वारा कहीं जाती है। चूँकि कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद हुई। इस कारण यह कहा जा सकता है कि शताब्दी के बाद ही कौटिल्य अर्थशास्त्र लिखी गई। पाश्चात्य विद्वानों डॉ0 फ्लैरो, डॉक्टर थॉमस, विन्टर निट्ज और कीथ आदि ने इसकी रचना लगभग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी को माना है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई।

रचनाकार :–

कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में आचार्य कौटिल्य ने की। आचार्य कौटिल्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त था। पिता का नाम चणक होने के कारण उनका नाम चाणक्य भी पड़ा। कौटिल्य (कुटिल से व्युत्पत्न) इनका गोत्रनाम आथवा कुटिल या कूट–नीति के प्रमुख प्रवर्तक एवं आचार्य होने के कारण इनको कौटिल्य कहा गया। उनका जन्म ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में मगध राज्य में हुआ तथा उनकी शिक्षा–दीक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में हुई। उन्होंने नंद वंश का नाश कर चंद्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर आरूढ़ किया। मौर्य वंश की स्थापना के पश्चात सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (321–298 ई०पू०) के शासनकाल में कौटिल्य महामंत्री नियुक्त हुए। उन्होंने चंद्रगुप्त के प्रशासकीय उपयोग के लिए अर्थशास्त्र ग्रंथ की रचना की जोकि सूत्र शैली में लिखी हुई थी। आचार्य कौटिल्य ही इस विश्व प्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र के रचनाकार हैं, इसके विषय में बहुत सारे प्रमाण प्राप्त होते हैं–

कौटिल्य अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत संकेत के रूप में प्राप्त होता है कि आचार्य कौटिल्य ही इसके रचनाकार हैं। अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय के अंत में कौटिल्य इस शास्त्र के प्रणेता कहे गए हैं। द्वितीय अधिकरण के दसवें अध्याय के अंत में वे राजाओं के लिए शासन– विधि के निर्माता कहे गए हैं, अंतिम श्लोक में यह वर्णित है कि उसने, जिसने नन्द के चंगुल से पृथ्वी की रक्षा की, इस ग्रंथ की रचना की। वहीं पर यह भी आया है कि अर्थशास्त्र के भाष्यकारों की विभिन्न व्याख्याओं को देखकर विष्णुगुप्त ने स्वयं सूत्र एवं भाष्य का प्रणयन किया। अर्थशास्त्र (15.431) में रचनाकार का स्पष्ट कथन है–

येन शास्त्रं च शास्त्रं च नन्दताजगता च भूः।
अमर्षेणोध्दृतान्याशु तेन शास्त्रमिदंकृतम्।। इति।।

अर्थात् इस ग्रंथ की रचना उन आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय और कुशासन से क्रुद्ध होकर नन्द के हाथ में गए हुए शस्त्र, शास्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

कामन्दक ने अपनी पुस्तक नीतिसार में इस बात की पुष्टि की है कि अर्थशास्त्र का लेखक वही आचार्य कौटिल्य है जिन्होंने चंद्रगुप्त को राजगद्दी पर आरूढ़ किया। उन्होंने नीतिसार में कहा है कि– "कामन्दकनीति उसी विद्वान् के ग्रंथ के आधार पर लिखी गई है, जिसके वज्र से पर्वत की तरह स्थिर नन्द जड़ से उखड़ गए। जिसने चंद्रगुप्त को पृथ्वी का राजा बनाया, जिसने अर्थशास्त्र रूपी समुद्र में से नीतिशास्त्र रूपी अमृत को निकाला। उसी विष्णुगुप्त को नमस्कार है।"

कामन्दक सदृश दंडी ने भी कौटिल्य अर्थशास्त्र के रचनाकार विष्णुगुप्त अर्थात आचार्य कौटिल्य को माना है। दण्डी कहते हैं कि– "दंडनीति को पढ़ो। आचार्य विष्णुगुप्त ने मौर्य के लिए 6000 श्लोकों में संक्षेप में इस ग्रंथ को लिखा है कि यदि वह उत्तमविधि पर पढ़ी जाए तो इससे यथेष्ट फल मिले।"

इनके अतिरिक्त शिलालेख संबंधी प्रमाणों से भी यह ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य 321 ईस्वी पूर्व और अशोकवर्धन 296 ईस्वी पूर्व में राजगद्दी पर बैठे। इससे यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने इस ग्रंथ की रचना चंद्रगुप्त मौर्य के काल में की।

विषय–विवेचन :–

सूत्र शैली में लिखित कौटिल्य अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 प्रकरण अथवा विषय एवं 6000 श्लोक हैं। मुख्य रूप से यह गद्यात्मक है परंतु यत्र–तत्र श्लोक भी प्राप्त होते हैं। प्रत्येक अध्याय के अंत में एक या एक से अधिक श्लोक मिलते हैं। गद्य भाग को छोड़कर कुल 340 श्लोक हैं। इसके प्रारंभिक पांच अधिकरणों में राज्य के आंतरिक प्रशासन से संबंधित विषयों का विवेचन है। 6 से लेकर 13 अधिकरणों में राज्य के वैदेशिक संबंधों की विशिष्ट विवेचना की गई है तथा अंतिम के दो अधिकरणों में अन्यान्य विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इसमें आचार्य कौटिल्य ने सरलतम शैली में राजनीति एवं दंडनीति आदि शासन विज्ञान का उपदेशत्मक रूप में निरूपण किया है। पन्द्रह अधिकरणों में निबद्ध कौटिल्य–अर्थशास्त्र की विषय सूची इस प्रकार है–

1) प्रथम अधिकरण– विनयाधिकरण

विनयाधिकरण नामक इस प्रथम अधिकरण में कुल 18 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत राजानुशासन, राजा द्वारा शास्त्राध्ययन, आन्वीक्षिकी एवं राजनीति का स्थान, मंत्रियों एवं पुरोहित के गुण तथा उनके लिए प्रलोभन, गुप्तचर–संस्था, सभा बैठक, राजदूत, राजकुमार–रक्षण, अन्तःपुर के लिए व्यवस्था, राजा की सुरक्षा वर्णित है।

2) द्वितीय आधिकरण – अध्यक्षप्रचार

अध्यक्षप्रचार नामक इस द्वितीय अधिकरण में कुल 38 प्रकरण है जिनमें राज्य विभाग के पर्यवेक्षकों के विषय में, ग्राम–निर्माण, चारागाह, मार्गो के करों के अधिकारी, आय–व्यय निरीक्षक का कार्यालय, जनता के धन का गबन, राज्यानुशासन, राज्यकोष एवं खानों के लिए बहुमूल्य प्रसादों की परीक्षा, सिक्कों का अध्यक्ष, व्यवसाय, वनों अस्त्रों एवं शस्त्रों, तौल–बटखरों, चुंगी, कपड़ा बुनने, मद्यशाला, राजधानी एवं नगरों के आध्यक्ष इन विषयों का निरूपण है।

3) तृतीय अधिकरण – धर्मस्थीयाधिकरण

धर्मस्थीयाधिकरण नामक अधिकरण में कुल 19 प्रकरण है, जिनमें न्याय–शासन, विधि– नियम, विवाह प्रकार, विवाहित जोड़े के कर्तव्य, स्त्रीधन, पुत्र–भेद, व्यवहार की अनेक संज्ञा जैसे विषय निरूपित है।

4) चतुर्थ अधिकरण – कंटकशोधन

कंटकशोधन नामक चतुर्थ अधिकरण में कुल 14 प्रकरण है, जिनमें कंटक–निष्कासन, शिल्पकारों एवं व्यापारियों की रक्षा, राष्ट्रीय विपत्तियों, यथा–अग्नि, बाद, आधि–व्याधि, अकाल, राक्षस, व्याघ्र, सर्प आदि के लिए दवाएँ या उपचार, दुराचारियों को दबाना, कौमार अपराध का पता चलना, संदेह पर अपराधियों को बंदी बनाना, आकस्मिक एवं घात के कारण मृत्यु, दोषाङ्गीकार करने के लिए अति पीड़ा के साथ मृत्युदंड, रमणियों के साथ समागम, विविध प्रकार के दोषों के लिए अर्थदण्ड के विषय में कहा गया है।

5) पञ्चम् अधिकरण – वृत्ताधिकरण

वृत्ताधिकारकरण नामक पंचम अधिकरण में कुल 7 प्रकरण है, जिनमें दरबारियों का आचरण, राजद्रोह के लिए दण्ड, विशेषावसर पर राज्य कोष को सम्पूरित करना, राज्य कर्मचारियों के वेतन, दरबारियों की पत्रिकाएं, राज्य शक्ति की स्थापना के विषय आते हैं।

6) षष्ठ अधिकरण – योन्यधिकरण

योनि अधिकरण नामक इस छठे अधिकरण में कुल 2 प्रकरण है जिसके अंतर्गत मंडल रचना, सार्वभौम सत्ता के सात तत्व, राजा के शीलगुण शांति, तथा संपत्ति के लिए कठिन कार्य, षड्विध राजनीति, तीन प्रकार की शक्तियां जैसे विषय निरूपित है।

7) सप्तम् अधिकरण – षाड्गुण्य

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में कुल 28 प्रकरण हैं जिनके अंतर्गत राज्य के वृत्त (मंडल) में ही नीति की छः धाराएं प्रयुक्त होती हैं, संधि, विग्रह, यान, आसन, शरण गहना एवं द्वैधीभाव नामक छः गुण, सेना के कम होने एवं आज्ञा के उल्लंघन के कारण, राज मिलान, मित्र, सेना या भूमि की प्राप्ति के लिए संधि, पृष्ठभाग में शत्रु, परिसमाप्त, पुनर्गठन, राज–मंडल आदि विषय आते हैं।

8) अष्टम् अधिकरण – व्यसनाधिकरण

व्यासनाधिकरण नामक इस अष्टम अधिकरण में कुल 8 प्रकरण है जिसके अंतर्गत सार्वभौम सत्ता के तत्वों के व्यसनों के विषय में राजा एवं राज्य के कष्ट अर्थात बाधा, मनुष्य एवं सेना के कष्ट के विषय में बताया गया है।

9) नवम् अधिकरण – अभियास्यत्कर्माधिकरणा

अभियास्यत्कर्माधिकरण नामक इस नवम अधिकरण में कुल 12 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत में आक्रमणकारी के कार्य, आक्रमण का उचित समय, सेना में रंगरूटों की भर्ती, प्रसाधन, अंतः एवं बाह्य कष्ट, असंतोष, विश्वासघाती, शत्रु एवं उनके मित्र के विषय में बताया गया है।

10) दशम् अधिकरण – संग्रामाधिकरण

संग्रामाधिकरण नामक इस दशम अधिकरण में कुल 13 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत युद्ध के बारे में सेना का पड़ाव डालना, सेना का अभियान, समरांगण, पदाति (पैदल सेना), अश्वसेना, हस्तिसेना आदि के कार्य, विविध रूपों में युद्ध के लिए टुकड़ियों को सजाना जैसे विषय निरूपित हैं।

11) एकादश अधिकरण – संघवृत्ताधिकरण

संघवृत्ताधिकरण नामक इस एकादश अधिकरण में कुल 2 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत नगरपालिका एवं व्यवसाय नियम के विषय में आचार्य कौटिल्य ने अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं।

12) द्वादश अधिकरण – आबलीयसाधिकरण

आबलीयसाधिकरण नामक द्वादश अधिकरण में कुल 9 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत शक्तिशाली में शत्रु, दूत भेजना, कूट–प्रबंधन योजना, अस्त्र–शस्त्र सज्जित गुप्तचर, अग्नि, विष एवं भण्डार तथा अन्न–कोठार का नाश, युक्तियों से शत्रु को पकड़ना, अंतिम विजय इन विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

13) त्रयोदश अधिकरण – दुर्गलम्भोपायाधिकरण

दुर्गलम्भोपायाधिकरण नामक इस अधिकरण में कुल तपोदश प्रकरण हैं, जिसके अंतर्गत दुर्ग जीतना, फूट उत्पन्न करना, युक्ति से युद्ध कौशल आदि से राजा को आकृष्ट करना, घेरे में गुप्तचर द्वारा राज्य में शांति स्थापित करना इन विषयों का निरूपण है।

14) चतुर्दश अधिकरण – औपनिषदिकाधिकरण

औपनिषद नामक इस चतुर्दश अधिकरण में कुल 3 प्रकरण हैं जिसके अंतर्गत गुप्त साधन, शत्रु की हत्या के उपाय, भ्रमात्मक रूप–स्वरूप प्रकट करना और औषधियाँ एवं मंत्र प्रयोग जैसे विषयों का निरूपण है।

15) पञ्चदश अधिकरण – तंत्रयुक्तयधिकरण

तंत्रयुक्तयाधिकरण नामक इस पंचदश अधिकरण में केवल एक ही प्रकरण है जिसके अंतर्गत उनकी कृति का विभाजन एवं उनका निर्देशन है।

13.3 कल्याणमय राज्य का प्रारूप

आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना मुख्य रूप से राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित करने के लिए की थी। तत्कालीन समाज को मत्स्य न्याय जैसे विकारों से मुक्त करने एवं समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए आचार्य कौटिल्य ने अपनी कृति अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्यों से लेकर नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों से संबंधित विधि एवं नियमों को सरलतम शैली में लिपिबद्ध किया है। मौर्यकालीन ऐतिहासिक तत्वों से इस बात की प्रतीति होती है कि आचार्य कौटिल्य ने नन्द वंश का नाश कर चंद्रगुप्त मौर्य को राजगद्दी पर आरुढ़ किया। उन्होंने न केवल मौर्य वंश को भारतीय राजसत्ता सौंपी अपितु भारत में सुचारू रूप से शासन करने हेतु सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के लिए अर्थशास्त्र की रचना की। राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदि नीतियों पर आधारित यह अर्थशास्त्र सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के लिए बहुत अधिक उपादेयपूर्ण सिद्ध हुआ। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य के कल्याण में प्रारूप को बताते हुए आचार्य कौटिल्य ने कई प्रकार के तत्वों का विवेचन किया है। उनके द्वारा बताए गए सिद्धांतों में मुख्य रूप से षष्ठ–अधिकरण के प्रथम अध्याय में वर्णित सप्तांग सिद्धांत एवं द्वितीय अधिकरण के अंतर्गत आनेवाले नागरिकप्रणिधि जैसे सिद्धांत राज्य के कल्याणमय प्रारूप के लिए उत्तरदायी हैं।

13.3.1 सप्तप्रकृतियाँ

अर्थशास्त्र में आचार्य कौटिल्य ने राज्य के संचालन हेतु एवं राज्य में सुव्यवस्था एवं सुशासन लागू करने के लिए सात प्रकार के तत्वों को आवश्यक माना है। ये सात प्रकार के तत्व के राज्य की प्रकृतियाँ कहलाती हैं। इन प्रकृतियों को सप्तांग भी कहते हैं क्योंकि जिस प्रकार मानव शरीर के सभी अंग शरीर के लिए उपकारी होते हैं, उसी प्रकार यह सातों अंग भी शासन व्यवस्था के लिए उपकारी होते हैं। आचार्य कौटिल्य ने राज्य के इन सप्ताङ्गों अथवा सप्तप्रकृतियों के संदर्भ में जो उपदेश दिए वह उनका सप्ताङ्ग–सिद्धांत कहलाया। कौटिल्य अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण के प्रथम अध्याय एवं छियानबे प्रकरण में प्रकृति सम्पदा शीर्षक के रूप में ये सप्तप्रकृतियाँ निरूपित है। इनके संदर्भ में आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है–

'स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।'

अर्थात् स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना, मित्र ये सात प्रकृतियाँ। इन सात प्रकृतियों के गुणों के विषय में भी आचार्य कौटिल्य ने बताया है। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित सब प्रकृतियों में प्रथम स्थान पर स्वामी आते हैं। स्वामी जिसका अभिप्राय राजा से है, के विषय में आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि राजा राज्य का प्रधान और केंद्र होता है उसकी सफलता पूर्ण रूप से उसके चरित्र गुण एवं नीतियों पर निर्भर करती हैं। राजा

शासन में एक धुरी के समान है जो शासन संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेकर उसे गति प्रदान करता है इसलिए उन्होंने राजा के गुणों के ऊपर विशेष बल दिया है। सप्तांग के अंतर्गत आने वाली दूसरी प्रकृति अमात्य है। अमात्य से आचार्य का तात्पर्य मंत्री परिषद से है जोकि राज्य का दूसरा आवश्यक तत्व है।

अमात्य के अंतर्गत केवल मंत्री ही नहीं अपितु सभी प्रकार के शासन अधिकारी, शासन–विभाग के अध्यक्ष एवं राज्य के अन्य कर्मचारी भी आते हैं। आचार्य कौटिल्य का ऐसा मानना है कि राज्य के सुचारू रूप से संचालन हेतु मंत्रिपरिषद भी एक प्रमुख कारक है, क्योंकि राज्य मंत्रियों एवं कर्मचारियों के बिना सुचारू रूप से शासक का संचालन करने में असमर्थ है, इस कारणवश राजा को अपनी सहायता के लिए पग पग पर अमात्यों की आवश्यकता होती है। राजा के सहयोग के लिए बनी मंत्री परिषद में आने वाले अमात्य एवं मंत्रियों के विषय में पाटिल कहते हैं कि यह मंत्री और अमात्य सामर्थ्यवान बुद्धिमान एवं गुणवान होने चाहिए तथा उस अमात्य में से श्रेष्ठ, विश्वासपात्र और अनुभवी व्यक्ति को ही मंत्री बनाना चाहिए। तृतीय प्रकृति के अंतर्गत जनपद आता है, यह राज्य का तीसरा आवश्यक तत्व है। आचार्य कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से कोई परिभाषा नहीं दी है फिर भी जनपद से उनका अभिप्राय केवल एक प्रदेश नहीं अपितु राज्य के निवासी या जनसंख्या से है क्योंकि कौटिल्य ने यह लिखा है कि जनता के अभाव में जनपद की कल्पना नहीं की जा सकती है और जनपद के बिना राज्य का भी अस्तित्व असंभव हो जाएगा। राज्य का चौथा प्रमुख तत्व अथवा प्रकृति दुर्ग है। प्रतिकूल परिस्थितियों में एवं आपत्ति काल में अपने एवं राज्य के निवासियों की रक्षा हेतु निर्मित दुर्ग एक आवश्यक तत्व है। इस कारणवश जनपद में जगह–जगह पर दुर्गों का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे कि शत्रुओं के आक्रमण से राज्य की रक्षा संभव हो सके। आचार्य कौटिल्य ने दुर्गों के प्रकारों की भी व्याख्या की है। पांचवा प्रमुख तत्व या प्रकृति कोश है। राज्य की तांत्रिक सुदृढ़ता उसकी कार्य क्षमता एवं प्रगति उसके कोशो पर निर्भर करती है। कोश से अभिप्राय अर्थों का संचयन एवं संग्रह है जिससे कि राज्य कार्य के संचालन हेतु धन प्राप्त किया जाता है। दंड सप्तकृतियों में छठे स्थान पर आता है। दंड से अभिप्राय सेना है। जिसके अंतर्गत चतुरंगिणी सेना अर्थात हाथी, घोड़े, रथ पर सवार सेनाएँ एवं पैदल चलने वाली सेनाएँ आती हैं। सप्त प्रकृतियों में अंतिम प्रकृति मित्र है। कौटिल्य के अनुसार राज्य की उन्नति के लिए एवं आपत्ति के समय राजा की सहायता के लिए मित्रों की आवश्यकता होती है। इस कारणवश राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह ऐसे व्यक्तियों को मित्र बनाएं जो उसकी सहायता करें। मित्रों के चयन हेतु आचार्य कौटिल्य ने बहुमूल्य उपदेश दिए ताकि उसके तहत मित्र बनाए जाए, वह प्रयोजन सही फल दें।

उपरोक्त सप्तप्रकृतियों की बोधगम्यता के पश्चात उनके गुणों एवं स्वरूपों की विस्तृत विवेचना हेतु कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित स्वयं आचार्य कौटिल्य के विचार से यह अपेक्षित है, जिसके दृष्टिगत इन सातों अंगों का पृथक पृथक विवेचन आचार्य कौटिल्य के शब्दों में अग्र लिखित हैं।

1. स्वामी–

महाकुलीनो दैवबुद्धिसत्त्वसम्पन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः

स्थूललक्षो महोत्साहः दीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढ़बुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को

विनयकाम

इत्याभिगामिका गुणाः। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः।

शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः। वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमति – बलवानुदग्रः

स्ववग्रहः कृतशिल्पोव्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतिकारो

ह्रीमानापत्प्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः सन्धि–

विक्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संवृतः आदिनाभिहास्यजिह्मभृकुटीक्षणः

कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्लःस्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार

इत्यात्मसम्पत्।

अर्थात् राजा (स्वामी) उत्तम कुलोत्पन्न, वृद्धों को मानने वाला, धार्मिक, सत्यवाद प्रतिज्ञाधारी, कृतज्ञ, ऊँचे उद्देश्य वाला, महोत्साही, कार्य में देर नहीं करने वाला, समर्थ सामन्तास युक्त, दृढ़ बुद्धि वाला, उत्तमोत्तम मनुष्यों की सभा में बैठने वाला, शास्त्र मर्यादा का अभिलाषी – ये राजा के गुण हैं। इन्हीं गुणों के कारण राजा के पास जाने की इच्छा होती हो, सुनने की इच्छा, उचित बात या शास्त्र का सुन लेना, सुनकर ग्रहण करना, ग्रहण करके धारण कर लेना, धारण के अनन्तर विज्ञान, फिर तर्क–वितर्क और तत्वों का जानना ये राजा के बुद्धि के गुण हैं। शौर्य, क्रोध, शीघ्रकारीपन, चतुराई ये चार राजा के उत्साह गुण हैं। अर्थ पूर्ण वचन बोलने में कुशल, प्रतिभा संपन्न, भाषण करने में समर्थ, स्मृति, बुद्धि और बल संपन्न, उन्नतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदि को चलाने में कुशल, विपत्ति के समय शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, उपकार और अपकार का बदला देने में समर्थ, लज्जाशील, आपत्ति और प्रकृति के ऊपर अधिकार रखने वाला, दीर्घदर्शी, परिणामदर्शी, देश, काल पुरुषार्थ के करने में प्रधान शक्ति युक्त, संधिविग्रह के समय का ज्ञाता, त्यागी, नियमानुकूल पण बढ़ाने वाला, शत्रु छिद्र द्रष्टा, अपने आकार को छुपाने वाला, दीन पुरुषों की हँसी न करने वाला, टेढ़ी भृकुटी से न देखने वाला, काम, क्रोध, लोभ, मोह, चपलता, उपताप, चुगली आदि दुर्गुणों से रहित, प्रियभाषी, मुस्कुराहट के साथ उत्तम बोलने में समर्थ, वृद्धों के आचार और उपदेश का ज्ञाता राजा श्रेष्ठ है यह आत्मसम्पत कहलाती है।

2. अमात्य

कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्य कल्प्यते सामर्थ्यतश्च।

अर्थात् कार्य के उपस्थित होने पर देश, कालानुसार जैसा उचित हो पुरुष को अधिकार देने चाहिए क्योंकि अमात्य के बनाने में समयानुसार योग्यता की ही मुख्यता है।

विभाज्यामात्यविभव देशकालौ च कर्म च।
आमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युनतु मन्त्रिणः।।

अर्थात् राजा इस प्रकार अमात्योचित गुण, देश, काल और कार्योचित व्यवस्था देखकर उपर्युक्त योग्यता संपन्न किसी भी पुरुष को अमात्य अथवा राज्य–प्रबंधकारी बना सकता है, परंतु सहसा मंत्री पद पर किसी को नियुक्त न करें।

जानपदः अभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः

प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः

स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसम्पत्। अतः पादार्धगुणहीनी

मध्यमावरौ। तेषां जनपदमवग्रहं चाप्तः परीक्षेत। समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च।

कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च। कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च।

आपद्युत्साहप्रभावी कलेशसहत्वं च। संव्यावहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं चासंवासिभ्यः

शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्य च। प्रत्यक्षतः सप्रियत्वमवैरित्वं च।

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। स्वयदृष्ट प्रत्यक्ष परोपदिष्ट परोक्षम्।

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम्। अयोगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च

देशकालात्यो मा भूदिति परोक्षममत्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म। पुरोहितमुदितोदितकुलशील

षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् अथर्वभिरूपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्य शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

अर्थात् अपने देश और उत्तम कुल में उत्पन्न, समय पर अच्छी तरह अपने अनुकूल चलाये जाने या उत्तम–उत्तम बंधुबांधवों से योग्य, शिल्पविद्या में कुशल, गंभीरता से देखने वाला, विद्वान्, स्मृति आदि गुणों से संपन्न, कार्यकुशल, वक्ता, तीव्र भाषण देनेवाला, झटपट प्रबंधन की योग्यता से समन्वित, उत्साह और प्रभावशाली, क्लेश सहने में समर्थ, पवित्र आचरणधारी, स्नेह करने वाला, दृढ़भक्ति से युक्त, शील, बल, आरोग्य और मानसिक शक्ति से संपन्न, जड़ता, चपलता से शून्य, सबका प्रिय और व्यर्थ किसी से वैर मोल नहीं लेने वाले को मंत्री बनाना चाहिए। ऐसा उत्तम मंत्री योग्य राजा के महत्व का सूचक होता है। जिस मंत्री में तीन भाग के ये गुण हों और एक भाग की न्यूनता हो तो वह मध्यम और जिसमें आधे गुण हों– वह क्षुद्र मंत्री होता है। इस प्रकार के मंत्री की आप्त अर्थात् विश्वासी पुरुषों द्वारा परीक्षा कराए कि यह अपने ही देश का है और इसके बान्धव उत्साह से संपन्न है। इसके साथ पढ़ने वाले पुरुषों से इसके शिल्प जिसके अंतर्गत कारीगरी या हाथी आदि की सवारी आती हैं तथा शास्तज्ञान की परीक्षा करें। राजा कामों का आरंभ कराकर उसकी बुद्धि, स्मरण शक्ति और चतुराई की परीक्षा लें। शास्त्रचर्चा प्रारंभ कर उसके बोलने, व्याख्या करने और शीघ्र उत्तर देने की शक्ति की पड़ताल करें। आपत्ति के समय उत्साह, प्रवाह और सहनशक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उसके साथ व्यवहार करके हृदय की पवित्रता, मित्रता और दृढ़ भक्ति की परीक्षा ले। साथ रहने वाले पुरुषों से मंत्री बनाने योग्य व्यक्ति के शील, बल आरोग्य, धैर्य, ज्ञान और गंभीरता की राजा

जाँच करें, सुंदर आकृति, सबसे प्रेम और किसी से वैर न करने वाले को राजा अपने यहाँ बुलाये और उसकी देखभाल करे। राजा की पड़ताल प्रत्यक्ष और परोक्ष तथा अनुमान द्वारा होती है। जो बात स्वयं देखी जाए वह प्रत्यक्ष और जो दूसरे के द्वारा देखी जाए व परोक्ष कहलाती है। किसी काम के किए हुए भाग से नहीं किए हुए काम को भी समझ लेना अनुमेय कहलाता है। कार्य बहुत से होते हैं, वे एक साथ पूरे नहीं किए जा सकते। उनकी स्थिति भी भिन्न–भिन्न स्थानों में होती है। उचित देश और काल की किसी प्रकार त्रुटि न हो पाए, इसके लिए राजा अपने पीछे से मंत्रियों द्वारा कार्य संपादन कराए। इसीलिए अमात्य आदि की नियुक्ति की जाती है। उन्नत से उन्नत कुल में उत्पन्न, शील और आचार से सम्पन्न, वेद और व्याकरणादि वेदों के छह अगों के ज्ञाता, दण्डनीति में कुशल, दैवी और मानुषी विपत्तियों को अथर्ववेद के मंत्रों द्वारा निवारण करने के उपाय को जाननेवाला, पुरोहित बनाने के योग्य होता है। आचार्य को शिष्य, पिता को पुत्र और स्वामी को सेवक जिस तरह मानता है, राजा भी उसी प्रकार

पुरोहित को पूज्य माने।

ब्राह्मणेनैधित क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यमन्तं शास्त्रानुगतशस्वितम्।।

अर्थात् इस प्रकार पुरोहित द्वारा पढ़ाया हुआ और मंत्रियों की मंत्रणा से युक्त, राजवंश सर्वदा विजयी रहता है। इसका शास्त्रानुसार कर्म ही शस्त्र होना चाहिए। ऐसे राजवंशों को कोई भी पराजित नहीं कर सकता है।

3. जनपद :–

आचार्य कौटिल्य ने संपूर्ण राज्य को पुर एवं जनपद के रूप में विभाजित किया है। पुर से आभिप्राय राजधानी तथा जनपद से राष्ट्र है। उनके अनुसार जनपद की स्थापना हेतु ऐसी जगह श्रेष्ठ होती है। जहाँ अन्नों की अच्छी पैदावार, आत्मरक्षा हेतु वन एवं पर्वत हो। पशु पालन हेतु जलाशयों एवं चारागाहों का उचित प्रबंध, स्वच्छ जलवायु एवं प्रेम आदि गुणों से युक्त अच्छे स्वभाव के लोगों के होने की अनिवार्यता आवश्यक है। क्योंकि प्रजा के सद्गुण एवं संगठित शक्ति ही शासन एवं राष्ट्र को सुदृढ़ बनाते हैं। जनपद के विषय में कौटिल्य यह भी कहते हैं कि–

मध्ये चान्ते च स्थानवानात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी
शक्यसामनतः पङ्कपाषाणोषरविषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः कान्तः
सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पौरुषेयो गुप्तचरोः पशुमान् अदेवमातृको
वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रबहपण्यो दण्डकरसहः कर्मशीलकर्षकाः
अबालिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचिमनुष्य इति जनपदसम्पत्।

अर्थात् जनपद के मध्य और अंत में दुर्ग होने चाहिए जो आपातकाल में अपने और बाहर से आने वाले पुरुषों के भोजन के लिए पर्याप्त धन वाला हो। जो पर्वत और नदियों के कारण अपनी रक्षा में समर्थ हो। जिसमें थोड़े परिश्रम से अन्न उत्पन्न हो सके, जिसमें शत्रु के द्वेषी पुरुष हों। जिसमें शक्तिशाली सामंतों का निवास हो। कीचड़, पत्थर, ऊषर, विष स्थान, कण्टक श्रेणी, सिंह आदि जंतु मृग और वन से रहित, नदी सरोवर से सुंदर हल के जोतने योग्य भूमि, खान, वन की

लकड़ी और हाथियों के वन से संयुक्त, जहाँ का जलवायु और गौ पुरुषों के उपयोगी, सुरक्षित गोचर भूमि से युक्त, पशुओं से भरे हुए, जल की वर्षा के बिना भी उत्पन्न करने वाला, जल स्थल के मार्ग से सुसंपन्न सारयुक्त बहुत सी चित्र वस्तुओं से युक्त दण्ड के कर को सह लेने वाला, परिश्रमी किसानों से युक्त, बुद्धिमान् राजा से परिपालित, उत्तम वर्ण के लोगों से ऊरा हुआ, भक्त और पवित्र आचार वाले, पुरुषों से व्याप्त जनपद उत्तम माना गया है। उपर्युक्त सामग्री जनपद सम्पत कहलाती है।

भूतपूर्वमभूतपूर्व वा जनपद परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत्।

शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्राम क्रोशाद्विकोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्।

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत्।

अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं, द्विशतग्राम्याः कार्वटिकं,

दशग्रामीसङ्ग्रहेण सङ्ग्रहणं स्थापयेत्। अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि।

जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत्।

तेषामन्तराणि वीगुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः।

अर्थात् पुराने नए देश के बचाने के लिए राजा अन्य देश के मनुष्य को बुलाकर या अपने देश के प्रांत को उलट–पुलट करके बसा ले। राजा को प्रत्येक ग्राम में शिल्ही और कृषक ही अधिक बसाने चाहिए। 1 ग्राम में 100 से न्यून और 500 से अधिक घर नहीं बसाने चाहिए। यह ग्राम दो–दो कोस की दूरी पर बसाने योग्य है। समय पड़ने पर एक ग्राम दूसरे ग्राम की रक्षा कर सकें ऐसा भी उचित प्रबंध हो। राजा ग्राम की सीमा को नदी, पर्वत, वन, बेल के वृक्ष, खाई सेतुबंध, सेमल और शमी, बड़, गूलर आदि के वृक्षों से सुशोभित बनाए। आठ सौ ग्राम के मध्य में एक स्थानीय बड़ा नगर बसावे। चार सौ गांव के मध्य में एक द्रोण मुख नगर की स्थापना करें। दो सौ गांव के मध्य में कस्बे की रचना करनी उचित है। दश गांव का संग्रह करके उसके मध्य में कर आदि के संग्रह करने को संग्रहक नामक स्थान की स्थापना करें। इस प्रकार अपने इस नवीन प्रदेश की सीमा पर राज्यपाल नामक अध्यक्ष की नियुक्ति करके दुर्ग रचना करें। इस नवीन प्रदेश के द्वारों पर भी अंतपाल नामक अध्यक्षों को ही राजा को नियुक्त करना उचित है। इस स्थान के मध्य भागों की रक्षा का भार, व्याध, शबर, पुलिंद, चांडाल तथा अन्य वनवासी पुरुषों के अधीन करना चाहिए।

अनुग्रहपरिहारौ चौभ्यः कोशवृद्दिकरौ दद्यात्। कोशोपघातिकौ वर्जयेत्।

अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते। निवेशसमकालं यथगतकं वा परिहारं दद्यात्।

निर्वृतपरिहारन् पितेवानुगृह्णीयात।
आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्
वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत्। सहोदकमाहार्योदक वा सेतुं बन्धयेत्।

अन्येषा वा बध्नतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्। पुण्यस्थानारामाणं च।

वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः सुजातादन्यः सङ्घः, समुत्थायकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेता। न च तत्रारामाविहारार्थाः शालाः स्युः। नटनर्तनगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः। निराश्रयत्वाद् ग्रामाणां, क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्यधान्यरसवृद्धिर्भवतीति।

अर्थात् राजा जो धन ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए एवं सफाई आदि में व्यय करता है। यह अनुग्रह और जो स्वास्थ्य की वृद्धि में औषधालय आदि पर व्यय किया जाता है, यह परिहार कहलाता है। इस प्रकार अनुग्रह और परिहार अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा और निरोगता के लिए जो राजा का धन व्यय होता है वह राजा के कोश की वृद्धि का कारण होता। यदि इन दोनों कार्यों में इतना अधिक व्यय हो जाए कि कोश खाली हो जाए तो इन मदों में भी राजा व्यय करना बंद कर दें। जब राजा के कोष में धन नहीं रहता है तो वह समय पड़ने पर पूर्व और देश को ही कष्ट पहुंचाता है जब राजा को कोष में दान आए उसी समय राजा जनता के निरोगता के लिए प्रतिज्ञात धन को तुरंत यथा स्थान पहुंचा दे।

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम्।
शोधयेत् पशुसङ्घैश्च क्षीयमाण वणिकपथं।।

अर्थात् राजा को समीपवर्ती प्रिय पुरुष, कर ग्रहण करने वाले अधिकारी या कर्मचारी, चोर सीमारक्षक तथा हिंसक जंतुओं से रुके हुए राजमार्ग को राजा समुचित प्रबंधन द्वारा ठीक ठीक रखें।

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान्।
रक्षेत् पूर्वकृतान् राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत्।।

इस प्रकार राजा हाथी और काष्ठ आदि वस्तुओं के वन, पूर्व सेतु रचित बन्ध और आकारों अर्थात खानों की रक्षा करें तथा अन्य भी नए–नए बनवाता रहे।

4. दुर्ग :–

दुर्ग–आचार्य कौटिल्य के अनुसार किसी भी राज्य की रक्षात्मकता था एवं उसकी आक्रामकता का पता उस राज्य के दुर्गों से होता है। राजा को अपने जनपद की चारों सीमाओं पर युद्धोचित प्राकृतिक दुर्गों का निर्माण अवश्य कराना चाहिए। आचार्य कौटिल्य ने पर्वत, धान्वन, वन और जल दुर्ग नामक चार दुर्गों का वर्णन अर्थशास्त्र में किया है। उन्होंने गिरी दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ दुर्ग बताया है क्योंकि उनका यह मानना है कि यह इतना अधिक वैशिष्ट्य पूर्ण होता है कि इसे जीतना अत्यंत कठिन है। उन्होंने यह भी बताया कि ये दुर्ग धन–धान्य, अस्त्र–शस्त्र, वाहन ब्राह्मण, देव मंदिर, यज्ञशाला, जल, वृक्षों से युक्त होने चाहिए। आचार्य कौटिल्य इन चार दुर्गों के विषय में कहते हैं–

1. औदक–दुर्ग

अन्तद्वीपं स्थलं वा निम्नावरूद्धमौदकं।

अर्थात् जल से घिरे हुए द्वीप अथवा खाई आदि गहरे खोदकर जल से भरे हुए स्थान से घिरे हुए स्थल दो प्रकार के औदक दुर्ग माने गए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि औदक दुर्ग वैसे दुर्ग होते हैं जो चारों तरफ से पानी अथवा तालाबों से घिरे हुए होते हैं तथा ऐसे प्रतीत होते हैं मानो तालाबों से आवृत टापू हों।

2. पर्वत–दुर्ग

प्रस्तरं गुहा पार्वतं।

अर्थात् पत्थरों से बना हुआ अथवा कंदराओं से व्याप्त दुर्ग पर्वत दुर्ग होता है। इन पर्वत दुर्गों का निर्माण बड़ी–बड़ी चट्टानों अथवा कंदराओं के रूप में किया जाता है। चूंकि इस दुर्ग का निर्माण पर्वतों में किया जाता है इसलिए इसे पर्वत दुर्ग कहा जाता है।

3. धान्वन–दुर्ग

निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं।

अर्थात् जल और घास आदि से रहित या ऊरस प्रदेश में बना हुआ दुर्ग धान्वनदुर्ग कहलाता है। धान्वनदुर्ग जल तथा घास से रहित होता है जिस कारण यह ऊरस प्रदेश में बना हुआ विशिष्ट दुर्ग माना जाता है।

4. वन–दुर्ग

खञ्जनोदकं स्तम्बगहनं वा वनदुर्गम्।

अर्थात् चारों ओर दलदल से गिरा हुआ अथवा कांटेदार झाड़ियों से व्याप्त दुर्ग वनदुर्ग कहलाता है। वन वर्ग के चारों ओर दलदली भूमि होती हैं तथा ऐसी–ऐसी कांटेदार सघन झाड़ियाँ होती हैं जिसे पार करना कठिन कार्य होता है।

दुर्गों के प्रकार के निरूपण के पश्चात आचार्य कौटिल्य उन दुर्गों के निर्माण विधियों हेतु दुर्ग विधान तथा दुर्ग के आंतरिक संरचना के अंतर्गत आने वाले राजमार्ग राजभवन और अमात्य के भवनों के निर्माण विधि हेतु दुर्ग निवेश के विषय में कहते हैं–

दुर्गविधान–

चतुर्दिश जनपदान्ते साम्परायिक दैवकृत दुर्ग कारयेद्। तेषां नदीपर्वतदुर्ग जनपदारक्षस्थान, धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा। जनपदमध्ये समुदायस्थानं स्थानीयं निवेशयेद्। वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वा अविशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्त दीर्घ चतुरश्र वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदक पण्यपुटभेदनमसवारिपथाभ्यामुपेतम्। तस्याः परिखास्तिस्त्रो दण्डन्तराः कारयेत्। पाषणेष्टकाबद्धपार्था वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः।

अर्थात् जनपद के चारों ओर युद्ध के उपयोगी विकृत पर्वत आदि स्थानों को ही दुर्ग के रूप में राजा द्वारा प्रयोग किया जाना चाहिए। इन दुर्गों में नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग देश की रक्षा का स्थान होता हैं। धान्वनदुर्ग और वनदुर्ग का निर्माण वनों में किया

जाता है। इनमें राजा आपत्ति काल में पलायन कर अपनी रक्षा कर सकता है। जनपद के केंद्र में राजा धनवृद्धि के बड़े–बड़े केंद्र बनाएं। वैसे स्थान पर ही नगर बसाने चाहिए जिस स्थान को भवन निर्माण कला जानने वाले विद्वान् श्रेष्ठ बताते हों। नदी के तट, नहीं सूखने वाले ह्रद के समीप, सरोवर या तालाब के किनारे पर गोल दीर्घ या चौकोर नगर बसाना होता है। वास्तुविद्या के ढंग पर उन नगरों में दाई ओर से नहर निकलवा देना चाहिए, इधर–उधर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के विक्रय के उपयोगी और जल तथा स्थल मार्ग से सुसंपन्न नगर बनवाने योग्य होते हैं। इन नगरों के चारों ओर चार–चार हाथ की दूरी पर तीन खाई खुदवा दें। इन खाइयों की दीवार पत्थर या ईटों से बनी हों जिनमें वर्षा का अथवा नहर का पानी भरा रहें। इनमें से जल के निकलने की लहरें भी बनवाने चाहिए। इन खाइयों में सुंदर–सुंदर कमल के फूल एवं भीषण मगरमच्छ रहे तो भी बड़ी अच्छी बात होगी।

दुर्ग विधान का निरूपण करते हुए आचार्य कौटिल्य ने दुर्ग के चारों ओर सोलह हाथ की दूरी पर चौबीस हाथ ऊंची तथा सब ओर से दृढ़ ऊपर की ओर चौड़ाई से दुगुना नीव में आकार वाला बड़ा प्राकार (सफील) बनवाने की बात कही है। उन्होंने क्रमशः उर्ध्वचय, मञ्चपृष्ठ एवं कुम्भकुक्षिक नामक तीन प्रकार के प्राकार बताए हैं। अत्यंत ऊँचा प्राकार होता है वह उर्ध्वचय, जो मध्यम ऊँचा होता है वह मञ्चपृष्ठ कथा जो अत्यंत पुष्ट बनाया जाता है वह कुंभकुक्षित कहलाता है। प्राकार की संरचना के विषय में आचार्य कहते हैं–

न त्वेव काष्ठमयम। अग्निरवहितो हि तस्मिन् वसति।
रथचर्यासञ्चार तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं
पृथुशिलासंहितं वा शैलं कारयेद्।

अर्थात् इस प्राकार में लकड़ी का कहीं भी उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि काष्ठ में सर्वदा अग्नि सन्निहित होती है। इस प्राकार का ऊपर इतना आकार हो कि उस पर एक रथ सीधी तरह चल सके। इसकी नींव ताल वृक्ष की ऊंचाई के सदृश गहरी हो और तलवे वानर के सिर के समान छोटे–बड़े पत्थरों से इनका अग्रभाग बनवाना उचित है, तथा मोटी मोटी शिलाओं से उसका उर्ध्व भाग पर्वत के आकार में बनाना चाहिए।

दुर्ग संरचना के अंतर्गत प्राकार के दोनों ओर छह हाथ का एक मंडप भी बनवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दुर्ग में गुप्त सोपानों तथा किवाड़ों की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। प्राकार के मध्य में ही बावड़ी बनवाकर उसका द्वार बनवाना चाहिए जिसका नाम पुष्करिणी द्वार रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दुर्ग के भीतर पत्थर, कुदाल, कुल्हाड़ी, बाण, कल्पना, बंदूक, कीलों की गदा, मुद्गल, लाठी, चक्र, यंत्र, तोप, लोहारों के कार्य में आने वाला सामान, शूल, तीक्ष नाक के भाले, बाँस, ऊँट की ग्रीवा के आकार के लंबे–लंबे शस्त्र, अग्नि से चलने वाले शस्त्र तथा अन्य जो युद्धोपयोगी सामान हैं वह सब इकट्ठा कर लेना चाहिए।

दुर्गनिवेश –

दुर्ग निवेश के अंतर्गत आचार्य कौटिल्य ने दुर्ग के अंतर्गत आने वाले राजमार्ग राजभवन और अमात्य के भवन के स्वरूप के विषय में व्याख्या करते हुए यह बताते हैं कि वे किस प्रकार के होने चाहिए। आचार्य कौटिल्य कहते हैं–

क) राजमार्ग–

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः। स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः। चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः।
राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्राम पथाश्चाष्टदण्डाः। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः। द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः। पञ्चारत्नयो रथपथश्चवारः पशुपथः। द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः।

अर्थात् इन दुर्ग में तीन पूर्व से पश्चिम एवं तीन उत्तर से दक्षिण राजमार्ग होने चाहिए। यह विभाग वास्तु विद्या अथवा भवन निर्माण कला के अनुसार है। उसमें जो बारह द्वार बताए गए हैं अर्थात् चारों ओर तीन–तीन द्वार कहे गए हैं। ठीक जल प्रबन्ध से युक्त, सुरंग भी अवश्य होने चाहिए। वह मार्ग कम से कम आठ हाथ चौड़े हों। राजमार्ग द्रोणमुख स्थानीय को जाने वाली और राष्ट्र में घूमने वाली सड़कें, पशुओं के स्थान और व्यापारी मण्डलियों के गमन के मार्ग ये सारे आठ दण्ड अर्थात् बत्तीस हाथ तक चौड़े होने चाहिए। सेतुवन का मार्ग चार दण्ड, हस्ति क्षेत्र का मार्ग आठ हाथ, रथ का मार्ग पांच हाथ और पशुओं के चरने जाने का मार्ग चार हाथ का बनाया जाए। दो हाथ चौड़ा बकरी आदि पशु और मनुष्यों के गमन की पगडण्डी बनाई जाएँ।

ख) राजभवन–

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे। वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्त

विधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं व कारयेत्।

अर्थात् जिस स्थान में चारों वर्गों के लोगों के रहने की सुविधा के योग्य भूमि भाग हो उसी में राजभवन बनाने को दुर्ग बनवाया जाए। इस सुंदर भूभाग के मध्य में उत्तर की ओर नवें विभाग में विधि पूर्वक अंतःपुर का निर्माण करवाया जाए। अंतःपुर अर्थात् रनिवास का द्वार पूर्व अथवा उत्तर को होना चाहिए।

ग) अमात्य–भवन –

तस्य पूर्वात्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः।

अर्थात् इस राजभवन के उत्तर दिशा और पूर्व दिशा के भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलस्थान और मंत्रियों के भवन बनवाए जाएं।

उपर्युक्त राजमार्ग, राजभवन एवं अमात्य के भवन निर्माण के अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने दुर्ग निवेश के संदर्भ में कुछ और भी बातें कहीं है। आचार्य कहते हैं कि राजभवन के पूर्व और दक्षिण के भाग में रसोईघर हस्ती शाला और भंडार घर बनवाए जाएं। राज भवन के आगे गंध माला अन्न घृत दुग्ध आदि की दुकानें बनवाई जाएँ। राजभवन के इर्द–गिर्द शिल्पकारों, कारीगरों, सेनापति आदि अधिकारीगणों तथा व्यापारी आदि के रहने की भी व्यवस्था की जाए। राज भवन के पीछे नगर और राजकुल के देवमंदिर, लोहार, मनिहार आदि शिल्पी और ब्राह्मण उत्तर दिशा में बसे। इस नगर की खाली भूमि में धोबी, जुलाहे, डोली ले जाने वाले आदि का समूह वास करें। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने दुर्गों की समुचित व्यवस्था की है।

5. कोष –

आचार्य कौटिल्य राजकोष के महत्व से भली–भांति परिचित थे इस कारण उनका यह विचार था कि राजकोष ऐसा होना चाहिए जिसमें कि पूर्वजों की तथा अपने धर्म की कमाई संचित हों। जो कि आपत्ति के समय प्रजा की धान्य, स्वर्ण, चांदी, नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा सोने से सहायता करें। राजकोष एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा राज्य के समस्त कार्यों का संचालन होता है। दुर्ग, राष्ट्र, खान, सेतु, वन, व्रज और माणिक पत्र यह सभी राजकोष के संचयन के साधन है। इस के संदर्भ में आचार्य कौटिल्य कहते हैं–

धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्य– प्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यपदमनायति सहेतेति कोशसम्पत्।

अर्थात् अपने पूर्वज अथवा अपने आप धर्म के द्वारा एकत्रित किए गए धन से संपन्न सुवर्ण, चाँदी से भरे हुए, विचित्र और स्थूल अमूल्य रत्नों से युक्त, चिरकाल तक रह चलने वाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति और आमदनी के अभाव को सहने में समर्थ होना कोश सम्पत है।

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः सङ्ग्रहणीयात्। जनपदं महान्तमल्पमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्य धान्यस्याशं तृतीय चतुर्थं वा याचेत। यथासार मध्यमवरं वा दुर्गसेतुकर्मवणिक्यपथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्रमाणं वा न याचेत धान्यपशुहरिण्यादि निविशमानाय दद्यात्।

अर्थात् जिन राजाओं के राजकोश में धन की कमी हो वैसे राजा धन की कठिनाई के उपस्थित होने पर अपने कोश को बढ़ाएं। राजा को चाहिए कि वह अपने राष्ट्र का छोटा भाग या बड़ा भाग जैसा भी भाग हो यदि उसमें अच्छी वर्षा और बहुत अधिक धान उत्पन्न होते हो तो उसमें वहां की प्रजा की इच्छा से तीसरा भाग अथवा चौथा भाग मांग ले। इसी के समान जहां मध्यम यह थोड़ी अन्न की उत्पत्ति हो उस स्थान से भी यथा योग्य अन्न प्राप्त करें। परंतु जो स्थान दुर्ग, सेतू, कारखाने, सड़क, जंगल में भवन, खान, चंदन आदि लकड़ी हाथियों के वन के योग्य हो या सीमा के अन्न में या शक्तिहीन हो उससे कुछ ग्रहण न करें। राजा को चाहिए कि वह नए स्थान पर आकर वास कर रहे तथा किसानों को बैल और नकद रुपयों की भी सहायता करें।

उपर्युक्त राजकोष के संवर्धन से संबंधित परामर्शों के अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने राजा को कृषकों से उनकी उपज का चतुर्थांश भाग, सोना–चांदी–हीरे–मोती– घोड़े और हाथी जैसी चीजों को बेचने वालों से उनके आय का पचासवाँ भाग, मुर्गे और सूकरवाले पशुपालकों से उनके आय का आधा भाग लेकर राजकोष की वृद्धि करने की बात कही है। राष्ट्र की आंतरिक शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के सभी कार्यों के संचालन हेतु पर्याप्त मात्रा में राजकोष की व्यवस्था हो। इस कारण आचार्य कौटिल्य ने राजकोश के संवर्धन पर विशेष बल दिया है।

6. दण्ड –

सप्त प्रकृतियों के अंतर्गत आने वाले दण्ड प्रकृति से आचार्य कौटिल्य का अभिप्राय राष्ट्र की सेना से है। उनका यह विचार है कि राज्य की सेना का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसमें कि वंशानुगत, स्थाई एवं वंश में रहने वाले सैनिक भर्ती हों। जिनके स्त्री–पुत्र राज्यवृत्ति को पाकर पूरी तरह संतुष्ट हों। युद्ध के समय जिनको आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराई जा सके और जो हर तरह के युद्ध को करने में निपुण हों।

राजा के लाभ तथा हानि में हिस्सेदार हों और क्षत्रियों की अधिकता हो। इन गुणों से युक्त सेना दंड संपन्न की जाती है कौटिल्य के मतानुसार राजा दंड की सहायता से आन्वीक्षकी, त्रयी ओर वार्ता के स्थायित्व एवं रक्षण अथवा योगक्षेम करता है। इसी के द्वारा राजा प्रजा को मत्स्य न्याय से बचाता है और दंड व्यवस्था से रक्षित चारों आश्रमों एवं संपूर्ण लोग अपने–अपने धर्म कार्यों में प्रवृत्त होकर श्रेष्ठ कर्म का संपादन करते हैं। इस संदर्भ में आचार्य कौटिल्य कहते हैं–

पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वपि सम्पादितः सर्वत्राप्रतिहतो दुःखसहो

बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिक्षयिकत्वादद्वैध्यः क्षत्रप्राय इति

दण्डसम्पत्। दण्डसम्पत् सारबलं पुंसाम्। हस्त्यश्वयोविशेषः– कुलं जातिः सत्त्वं वयः स्थता

प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति। पत्त्यश्वरथद्विपानां

सारत्रिभागमुरस्य स्थापयेद।

अर्थात् पिता और पितामह के आगे से चले आते हुए, सदा वश में रहने वाले सैनिक होने चाहिए। जिसके सेवक पुत्र और स्त्री वृत्ति से संतुष्ट हों, प्रवास अर्थात चढ़ाई में जाने पर जिसके कुटुंब को धन दिया जाता रहा हो, सब जगह अप्रतिहत गति से बढ़ा चला जाता हो, जो दुख सहने में समर्थ हो, जिसने बहुत से युद्ध कर रखे हों और जो सारी शस्त्र विद्या और युद्ध के ज्ञान में विशारद हो। राजा की वृद्धि और हानि में अपनी वृद्धि और हानि मानने वाला हो ऐसे क्षत्रिय से भरी सेना ही दण्ड सम्पत कहलाती है। राजाओं की शक्तिशाली सेना ही संपत्ति मानी जाती है। कुल क्रमागत सैनिक सारभूत होते हैं। हाथी और घोड़े में कुल, जाति, बल, आयु, प्राण, ऊंचाई–चौड़ाई, वेग, पराक्रम, युद्धशिक्षा, वीरता, मुँह को ऊँचे उठाए रहना और सवार के इशारे पर चलना अच्छे लक्षण है और शुभ चेष्टाओं से युक्त होना, सारता मानी गई है। पैदल, घोड़े, रथ, हाथियों के शक्तिशाली तीन भागों के बीच में रख और दो तिहाई सारभाग को कक्ष और पक्ष में लगाएं।

7. मित्र –

सप्तप्रकृतियों में आने वाले अंतिम प्रकृति मित्र के विषय में आचार्य कौटिल्य का विचार है कि एक अच्छा मित्र राजा को विपत्ति में पूर्ण सहयोग प्रदान करने वाला एवं उसका हितैषी होता है। उनके अनुसार एक राजा सेना एवं भूमि पाकर भी उतना समृद्धशाली नहीं होता जितना कि एक गुणवान मित्र को पाकर होता है। मित्र के संदर्भ में आचार्य कौटिल्य कहते हैं–

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थामिति मित्रसम्पत्। मित्रकृच्छ्रः अपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति। नित्यमवश्यं श्रेयं। तद्ध्यनुपकुर्वदपि नापकरोति इत्याचर्याः। नेति कौटिल्यः वश्यमनेति श्रेयं यावदुपकरोति तावन्मित्रं भवति। उपकारलक्षणं मित्रमिति। गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्प वेति। गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकर भवति। यदा चोत्तिष्ठते, तदा कार्यं साधयति इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः। लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्बल्याच्च यथेष्टभोग्यं भवति, नेतरत् प्रकृष्टभौमम्।

अर्थात् पितृ– पितामह कर्म से चले आ रहे, नित्य वश में रहने वाले, किसी प्रकार का

भेद नहीं मानने वाले, छोटे बड़े सारे कामों में सहायक मित्र होना मित्र सम्पत कहलाता है। जब मित्र की विपत्ति में सहायता की जाती है तो उस समय कोई तो हमेशा के लिए मित्र बन जाता है पर वह रहता स्वतंत्र है और कोई सदा को मित्रता के पाश में नहीं बँधता परंतु वश में हो जाता है। इनमें जो हमेशा के लिए मित्र बन जाते हैं चाहे वह अधीन न हो वही अच्छा है। वह यदि उपकार नहीं कर सकेगा तो वह हमारा अपकार भी नहीं करेगा ऐसा आचार्य कौटिल्य का विचार है। परंतु कौटिल्य इस सिद्धांत को नहीं मानते वे तो अपने अधीन रहने वाले राजा को ही उत्तम समझते हैं चाहे वह सदा के लिए मित्रता की डोरी में न बंधे। जब तक उपकार करेगा तब तक ही मित्र है। मित्र तो कहते ही उसे हैं जो उपकार करता है। बड़े प्रयत्न से सहायता करने वाला महान मित्र अच्छा है। थोड़े से प्रयत्न से तैयार होने वाला छोटा मित्र उत्तम है इस विषय में आचार्य का यह मत है कि चाहे बड़े प्रत्यय से सहायक बने परंतु महाशक्ति मित्र ही प्रताप करने वाला होता है। ज्यों ही यह उठता है त्यों ही कार्य बनता जाता है। परंतु कौटिल्याचार्य का मत यह नहीं है। वे तो थोड़े प्रयत्न से सहायक बन जाने वाले छोटे मित्र को ही उत्तम मानते हैं। थोड़े प्रयत्न से उठने वाला छोटा मित्र कार्य को समय नहीं देता है। वह दुर्बल होता है, इससे जहाँ इच्छा हो, वहाँ लगाया जा सकता है, परंतु महाशक्ति मित्र ऐसा नहीं कर सकता है, यदि वह दूर रहता हो तो बिल्कुल ही कार्य में नहीं आ सकता है।

मित्र के प्रकार –

आचार्य कौटिल्य ने नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृ पैत्रमाह, महत् और अद्वैध्य ये छः प्रकार के बताए हैं। यह विभाजन उन्होंने उनके स्वभावगत गुणों के आधार पर किया है–

नित्यं वश्यं लघुत्थानं पितृपैतामहं महत्।
अद्वैध्यं चेति सम्पन्नं मित्रं षड्गुणमुच्यते।

1. **नित्यं–मित्र** – जो बिना किसी धन के लालच से अपने पूर्व के बढ़े हुए संबंधी की रक्षा करता है और समय पर मित्र की रक्षा में तत्पर होता है वही नित्य मित्र कहलाता है–

   ऋते यदर्थं प्रणयाद् रक्ष्यते यच्च रक्षति।
   पूर्वोपचितसम्बन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते।।

2. **वैश्य–मित्र** – सर्वभोग, चित्रभोग और महाभोग– ये तीन प्रकार के वैश्य मित्र होते हैं तथा एकभोगी, उभयभोगी एवं सर्वतोभोगी वैश्य मित्र कहलाते हैं–

   सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते।
   एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम्।।

3. **लघुत्थान–मित्र** – लघुत्थान मित्र उसे कहते हैं जो बिना प्रयत्न के ही सेना को सहायता करता है।

4. **पितृपैतामह–मित्र** – पितृपैतामह मित्र उसे कहते हैं जो कुल क्रमागत मित्र होते हैं।

5. **महत्–मित्र** – जो मित्र अत्यंत सेना युक्त हो वे मित्र महत् मित्र कहलाते हैं।

6. **अद्वैध्य–मित्र** – जिन मित्रों का परस्पर एक ही स्वार्थ संबंध हो तथा जो उपकारी और विकारहीन हो एवं आपत्ति में भी दूर नहीं होने वाले हो वैसे मित्र

अद्वैध्य मित्र कहलाते हैं।

सारांशः संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात आप कौटिल्य अर्थशास्त्र में कल्याणमय राज्य के स्वयं जो प्राप्त है सात प्रकार के तत्वों के द्वारा राज्य अपनी सीमा का विस्तार कर सकता है जिससे अपने राज्य को सदृढ़ बनाए रख सकते हैं। सप्तांग सिद्धांत तथा दुर्गों के माध्यम से कौटिल्य ने राज्य के कलयाणकारी स्वयय की सरंचना की। अतः इस इकाई में आप राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को कौटिल्य अर्थशास्त्र के द्वारा जान पाएंगे।

बोध प्रश्न :–

1. नीचे लिखे प्रश्नों में सही/गलत का निर्धारण करें।
   i) गुरु बृहस्पति अर्थशास्त्र के प्राचीनतम आचार्य माने जाते हैं –सही/गलत
   ii) कौटिल्य अर्थशास्त्र में कुल अधिकरणों की संख्या दस हैं –सही/गलत
   iii) पितृपैतामह मित्र उसे कहते हैं जो कुल क्रमागत मित्र होते हैं –सही/गलत
   iv) दण्ड प्रकृति से आचार्य कौटिल्य का अभिप्राय राष्ट्र की सेना है – सही/गलत
   v) आचार्य कौटिल्य का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त था – सही/गलत
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –
   i) अर्थसंबंधी कार्यों का क्रमबद्ध ज्ञान कराने वाला ग्रंथ ..... कहलाता है।
   ii) आचार्य कौटिल्य का गोत्रनाम ..... है।
   iii) कौटिल्य अर्थशास्त्र में कुल ..... श्लोक हैं।
   iv) सप्तप्रकृतियों पर आधारित सिद्धांत ..... कहलाता है।
   v) जो मित्र अत्यंत सेना युक्त हो वे ..... मित्र कहलाते हैं।
3. अभ्यास प्रश्न –
   i) आचार्य कौटिल्य के सप्तांग सिद्धांत की विवेचना करें।
   ii) कौटिल्य अर्थशास्त्र के आधार पर दुर्गों के प्रकार को निरूपित करें।
   iii) कौटिल्याचार्य द्वारा गुणों के आधार पर वर्गीकृत मित्रों के प्रकार को निरूपित करें।